नोट

जो महाशय जैन भानु के दूसरे भाग के ग्राहक होना चाहते हैं, वह कृपा करके अभी से अपने नाम ग्राहक श्रेणि में दर्ज करा दें।

श्रीजैनधर्मोपदेशक

मुनि श्रीमद् वल्लभविजय जी महाराज

जन्म १९२७ दीक्षा_१९४४

उपोद्घात ।

प्राणि को शुद्धधर्म की प्राप्ति और उस पर शुद्धश्रद्धान का पाना अतीव कठिन है, दो पैसे का मट्टी का वासन (वर्तन) खरीदना हो तो लोग परीक्षा पूर्वक खूब ठोक बजा कर खरीदते हैं, परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि धर्म रूपी अमूल्य रत्न के खरी-दने समय परीक्षा नहीं की जाती, वह रत्न भी कैसा ? जो भवां-तरों में सुख देनेवाला है, इसलिये सर्व साधारण के हितार्थ निवेदन है कि यदि आप को आत्मकल्याण की इच्छा है तो परीक्षा पूर्वक शुद्धधर्म को अङ्गीकार कर उसका पालन करें।

काल के प्रभाव से अनेक प्रकार के पाखण्ड मत प्रचलित हो गये और हो रहे हैं ॥ जैनमत की दो बड़ी शाखायें प्रसिद्ध हैं, १ श्वेताम्बर, २ दिगम्बर, दोनों ही मूर्तिको मानते हैं, जो जैनियों का मूल सिद्धान्त है ॥

मूर्तिउत्थापक लुंकागच्छ के बजरंग जी यति का शिष्य लवजी नाम शिष्य हुआ, उस लवजी ने अपने गुरु से पराङ्-मुख हो दो और को अपने साथ ले विना गुरु धारे दीक्षा ली और मुंह पर कपड़े की पट्टी बान्धी अर्थात् सतारवें सैके में मूर्ति-उत्थापक मुंहबन्धा पन्थ निकाला, जो ढूंढक, साधमार्गी और स्थानकवासी वगैरह नामों से आजकल पुकारा जाता है।

यद्यपि इस पन्थवाले अपने आप को जैनमतानुगत ही प्रगट करते हैं परन्तु वास्तव में वह न जैन हैं और न जैन की शाखा, बलकि जैनाभास हैं; क्योंकि इनका आचार व्यवहार वेष श्रद्धा और प्ररूपना सर्वथा जैनमत से विपरीत और निराली है जिनका विस्तार पूर्वक वर्णन करना हम उचित नहीं समझते

प्रायः लोगों को मालूम होने से, अब हम यह बात सिद्ध कर दिख-लानी चाहते हैं कि यह पन्थ बेगुरा संमूर्छिमवत् है, अन्यान्य विद्वानों के प्रमाण तो कदाचित् हमारे ढूंढक पंथियों को न भी रुचें परन्तु देखो, इसी पन्थ की मानीती पार्वती स्वरचित ज्ञान-दीपिका पोथी के पृष्ठ १२-१३ में लिखती है कि :-

"इस रीती से पूर्वक यतिलोकों की क्रिया हीन हो रही थी सोई पूर्वक यतियों की लवजी नाम यति ने क्रिया हीन देख कर अनुमान १७२० के साल में अपने गुरु को कहने लगे कि तुम शास्त्रों के अनुसार आचार क्यों नहीं पालते तब गुरु जी बोले कि पंचमकाल में शास्त्रोक्त संपूर्ण क्रिया नहीं हो सक्ती तब लवजी बोले कि तुम भ्रष्टाचारी हो मैं तुम्हारे पास नहीं रहुंगा मैं तो शास्त्रों के अनुसार क्रिया करूंगा जब उसने मुख वस्त्रिका मुख पर लगाई"॥

ऋषिराज ढूंडिया साधु विरचित सत्यार्थसागर में लिखा है कि संवत् १७०९ में लवजी शाह-तिवारे ऋषि लवजी गच्छ बोसरावी (त्याग के) निकला तेहने साथे ऋषि थोभण जी १ ऋषि सखियोजी २ इन दोनों ने दीक्षा लीनी, लोकों ने ढूंडिया नामदिया"

बस पाठकवृन्द ढूंढियोंके ही घरके पूर्वोक्त दोनों प्रमाणोंसे स्वयं तात्पर्य निकाल लेवें कि सतारवें सैकेमें लवजी ने मुखपर पट्टी लगाई परन्तु यह कहीं नहीं लिखा कि अमुक के पास जाकर पुनः दीक्षा ली। जब लवजी के गुरु भ्रष्टाचारी हुए और उनको छोड दिया तो चाहिये था कि कोई सदाचारी गुरु धारण किया होता, सो तो कियाही नहीं, अतः सिद्ध हुआ कि यह ढूंढकपन्थ बेगुरा है-हां यदि अब भी पार्वती वा अन्य किसी ढूंढकपन्थी को मालूम हो तो बता देवे।

जिस पार्वती ढूंढनी का पूर्वोक्त वर्णन आया है जो आज कल मान की मारी फूली नहीं समाती, जो अपने नाम के साथ

पण्डिता बालब्रह्मचारिणी वगैरह पूंछड़ों को देख खूब हृष्ट पुष्ट हो रही है, जिसकी बाबत अंबाला शहर (पंजाब) निवासी ऋषि-केश शर्मा–ढूंढक–जैनरत्न–समाचार पत्रके–एडीटर ने आर्यभूषण मैशीन प्रेस मेरठ में छपवाकर एक हैंडबिल निकाला था, जिसकी नकल यह है:—

शिवप्रिया चरित्र

* अपर नाम *

(ढुंढक साधुवों की गुरुणी की पोल)

इस पुस्तक के अवलोकन करने से मान दग्धा पार्वती (ढूंढकणी) की विद्या, बुद्धि, विचार, संयम प्रमाद, ईर्षा, द्वेष, पण्डिताई, ब्रह्मचर्य, भली प्रकार प्रगट होजावेगा मूल्य प्रति पुस्तक १)

उसी पार्वती ढूंढनी ने "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनवा जोड़ा" इस कहावत को सार्थक कर एक पोथी रची जिस को लाला मेहरचन्द लछमनदास ने संवत् १९६२ में छपवाया, और नाम रख दिया "सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन"॥

यद्यपि ऐसी पोथी (परमार्थ से थोथी) का उत्तर रूप खण्डन के लिये परिश्रम करना उचित नहीं, तथापि "शाठ्यंशठंप्रतिकुर्यात्" इस वाक्यानुसार तथा अतीव प्रेरणा से तपगच्छाचार्य श्रीमद्विजया-नन्द सूरि (प्रसिद्ध नाम श्री आत्माराम) जी के शिष्य प्रशिष्यविख्यात श्रीमान् श्रीमुनिवल्लभविजय जी महाराज ने उत्तर रू खण्डन

लिखना आरम्भ किया और त्यार कर दिया, फिर भी चाहा कि इस को प्रकट न करना ही श्रेय है परन्तु हमारे ढूंढकभाई मि० वाडीलालवत् अनेक प्रकार के असन्तोषकारक और पूरे २ गप्पाष्टक प्रकट करते रहे। इस से तंग हो कर लाचार हम को भी मुनिमहाराजके परिश्रम को सफल करना पड़ा। हम नहीं चाहते थे कि अबला की थोथी पोथी के खण्डनार्थ ही मुनि जी अपनी सबला विद्वत्ता को प्रकट करते, परन्तु अबला की कृति में कई जीवों को अनुपकार और कुगति का कारण हो जाने का भय है क्योंकि अबलाने सारी पोथी में कई प्रकार के स्त्रीचरित्र खेल भोले भद्रिक जीवों को अपने मायावी जाल में फंसाने का पूरा २ उद्यम किया है इसलिये उपकारदृष्टि से मुनिजी कृत खण्डन को **जैनभानु** नाम से छपवा कर प्रकट करना पड़ा है। यद्यपि सम्पूर्ण पुस्तक को छपवा देना उचित था और चाहा था कि संपूर्ण ही छपवाई जावे; विभाग न किये जावें, परन्तु प्रायः लोगों की मांग अधिक आने से और सम्पूर्ण पुस्तक के छपने में प्रायः देर हो जाने के भय से अधुना केवल प्रथम भाग छपवा कर प्रकट किया जाता है और प्रार्थना की जाती है कि यदि शीघ्रता के कारण दृष्टिदोष से वा छापे की गलती से कहीं कोई अशुद्धि रह गई मालूम हो जावें तो शुद्ध कर लेवें और कृपया खबर कर देवें जिस से पुनरावृत्ति में शुद्धि की जावे इति शुभम् ॥

आप श्रीजैनश्वेताम्बरसंघ का दास,

जसवन्तराय जैनी,

लाहौर (पंजाब)।

ॐ

जैन भानुः

"नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः"

ऐंद्रश्रेणिनता प्रतापभवनं भव्यांगिनेत्रामृतं
सिद्धांतोपनिषद्विचारचतुरैः प्रीत्या प्रमाणीकृता
मूर्त्तिः स्फूर्त्तिमती सदा विजयते जैनेश्वरी विस्फुरन्
मोहोन्मादघन प्रमादमदिरामत्तैरनालोकिता। १।
देवान् गुरून्नमस्कृत्य स्मृत्वा देवीं सरस्वतीम्
प्रत्युत्तरं ददे किञ्चित् ढुंढकानां हिताय वै ॥ १ ॥

विदित हो कि इस दुषमार पंचमकाल महाविकराल में प्रायः जहां देखो हाल वेहाल होरहा है, प्रत्येक वस्तु की प्रायः हानि होती जाती है, जो कि कहने में नहीं आती है—

पंचकल्प भाष्य में तथा दुषमारे के अर्थात् पांचवें अरे के स्वाध्याय में फरमाया है कि—पंचमकाल में प्रायः प्राणी वहुत दुःखी होवेंगे, नगर ग्राम समान होवेंगे, ग्राम मरघट (श्मसान) समान होवेंगे पूर्ण ज्ञान और ज्ञानी नहीं होवेगा, मुक्ति भरतक्षेत्र में कोई नही पावेगा, वीतराग के वचन के उत्थापक मनःकल्पित पंथ के संस्थापक, कुमति जन वहुत होवेंगे, जो कदाग्रह के वश से अपने वचन का स्थापन, और शास्त्रवचन का उत्थापन करेंगे, धर्म के रस्ते के तोड़नेवाले, पाखंड के जोड़नेवाले, सत्यार्थ के मेटनेवाले, असत्यार्थ की शय्या में लेटनेवाले, आगमशाखा के मेटक, दुराचारिणी की तरह चेटक के करने वाले अति होवेंगे, चोर चरट अपने

बोल के नाश करने में घरट्ट, बोलने में फक्कड़, और करने में लाल बुजक्कड़ की कमी नहीं होवेगी, साधुजन दुख्यांगे, दुर्जन सुख पायंगे, राजा प्रजा को सतावेंगे, लोक लक्ष्मी से दुःख पावेंगे, मुंह मांगा मेघ न वरसेगा, दिन रात लोक तरसेगा, वल, वीर्य, पराक्रम, बुद्धि, आयु, पृथिवी, औषधियों का रस कस दिन प्रति दिन कम होवेगा ! इत्यादि जो कुछ कहा है सो प्रायः सब प्रत्यक्ष होरहा है, धर्म की अवनति तो ऐसी होती जाती है, कि जो कहने में नहीं आती है जिसमें भी जैनधर्म, कि जिसका है ऐन मर्म, जो देता है स्वर्ग अपवर्ग का शर्म, ऐसा ढीला होगया है, कि जिसके माननेवाले प्रायः छोड़ बैठे हैं सब कर्म, दिन प्रति दिन ह्रास होकर अति सांस लेने लग गया है ! जिसका कारण चारों ओर मे मारोमार पडने से विचारा होगया लाचार, जिसमें ममता का नहीं है पार, जिस अनुचित ममता ने कर दिया इसे खुआर, किसीने नहीं लीनी झट सार, मिथ्यामतियों ने दिया पटक के मार, तो भी यह रहा ऐसा गुलज़ार, जो करता है वहार, रोते हैं अक्ल खोते हैं देख कर दुश्मन इसका प्रचार, क्या जाने सार, महामूढ़मिथ्यात्वी गंवार, हीरे की सार, क्या जाने भंगी चमार ! देखिये ! किसी अकलमंद ने क्या अच्छा कहा है:—

"कद्रे ज़र ज़रगर विदानद–कद्रे जौहर जौहरी–शीशागर नादॉ च दानद–मेफ़रोशद संगहा–"

قدر زر زرگر بداند قدر جوهر جوهری ، شیشه گر نادان چه داند میفروشد سنگها

बस इसी तरह सार असार परमार्थ के जाने विना मनमाने गपोड़े मारनेवाला एक ढूंढपंथ विना गुरु, लवजी ने विक्रम संवत् १७०९ में मुंह पर कपड़े की टाकी बांध कर चलाया, बहुत भोले लोगों को भूलाया, देव दर्शन हटाया, अपना दृढ़तर कदा-

ग्रह दिलमें बठाया, सुगति में जाना मिटाया, प्रायः आज तक इस पंथ में कोई विद्वान् नही होने पाया है, जिसका प्रमाण रा० रा० वासुदेव गोविद आपटे, बी० ए० इंदौरकरने मुंबई की हिंदु यूनियन क्लब मे दिसम्बर १९०३ ईस्वी सन में बताया है, जो कि विविधज्ञान विस्तार नामक मासिकपत्र के जनवरी सन १९०४ के अंकमें मुंबई में छप कर प्रसिद्ध हुआ है; उसका कुछक अनुवाद यहां दिया जाता है, जो ठीक ठीक अकल में आता है।

"ढूंढिये नामक जैनशाखा के लोक मलोत्सर्ग के समय जो घिनावना कार्य करते हैं, उस बीभत्सव्यापार के वर्णन करने में संकोच होता है !

(नोट) ढूंढियेलोग श्वेतांबरीजैनियों में से निकला हुआ एक छोटा सा फिरका है यह मत कोई २५० वर्ष से निकला हुआ जिनमत के शास्त्रों से सर्वथा विरुद्ध है—श्वेतांबरों में ही ढूंढिया नामक एक शाखा है—इन लोगों का उल्लेख ऊपर अनेक जगह आया है, इन्हीं का मालवा में सेवड़े नाम है परन्तु ये स्वतः अपने को साधुमार्गी अथवा मठमार्गी (थानक पंथी) कहते है, कारण कि यह लोक प्राय मठों में रहते हैं, यह पंथ बहुत विचित्र है, यह मूर्त्ति वगैरह नहीं मानते अर्थात् इन लोगों को मंदिरों की आवश्यकता नही है, मनोविकारों का दमन करना यही बड़ा धर्म है, ऐसा वे समझते हैं; और इस धर्म का चिंतवन यही उनकी मानसपूजा है, तीर्थंकरों के पवित्र आचरणों का अनुकरण करना ऐसा वे कहते हैं, परन्तु तीर्थंकरों को कुछ विशेष मान देने की प्रथा उनमें नही है, उनके गुरु शुभ्रवर्ण के परन्तु कुछ मैले वस्त्र पहिनते हैं, श्वासोच्छ्वासक्रिया में उष्णश्वास से वायुकाय के जीव न मरें इसलिये मुख पर कपड़े की एक पट्टी

बांधते हैं, और रस्ता चलते पादप्रहार से जीव जंतुओं की प्राण हानि न होवे इसलिये झाड़ने के लिये हाथ में एक नरम कूच लेकर फिरते हैं, इस कूच को रजोहरण कहते हैं, इसी के 'कटासन' अथवा 'ओघा' ऐसे भी नाम हैं, यह लोग सारी जिंदगी में कभी स्नान नहीं करते, हजामत नहीं कराते, हाथ से केश उखाड़ते हैं, इनका निवास मठों में रहता है, इन मठों को थानक कहते हैं, इस पंथ में शिक्षित लोगों की संख्या वहुत ही थोड़ी है, संस्कृत भाषा के जैन धर्मग्रंथों के समझने योग्य विद्वत्ता शायद एक दो ही के अंग में होगी, जिन सूत्रों का गुजराती में भाषांतर हो चुका है उन्हीं को घोक घोक कर वे अपना निर्वाह करते हैं"

इस प्रकार इन अज्ञानियों के टोलों में एक व्रजदेश की जन्मी वाचाल पार्वती स्त्री आफंसी, जो कुछ समय आगरावाले स्वामी रत्न चंद ढूंढिये साधु के समुदाय में रही फिर कुछ देर इधर उधर देखती फिरती पंजावी अमरसिंघ ढुंढिये साधु की समुदायमें आकर मिलजुल गई, प्रायः इन पंजावी ढूंढिये साधुओं में कोई चलता पुरज़ा न होने के कारण "निष्पादपे देशे एरंडोपि द्रुमायते" इस नीति से सर्व मरदों में औरत ही प्रधानता की कोटि में प्रवेश कर गई ! वस मान के घोड़े चढ़ जो कुछ मन में आया अज्ञानियों को समझाया ! आप "सनातनजैनधर्मोपदेशिका! वालब्रह्मचारिणी जैनार्या जी श्रीमती श्री १००८ महासती श्रीपार्वतीजी" तथा "सनातन सत्यजैनधर्मोपदेशिका वालब्रह्मचारिणी जैनाचार्याजी श्रीमती श्री १००८ महासती श्रीपार्वतीजी" इत्यादि लम्बक लम्बा दुम सार्टिफिकट ले लिया, और-"कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानुमतीने कुनवा जोड़ा"-की तरह मन घडत वातें वना वना एक

थोथी पोथी का सेवकों को प्रदान किया ! अपनी सम्यक्त्व को कलंकित कर सुगति को ताला दिया ! जिसको देखकर हमारा चित्त करुणार्द्र होकर मध्यस्थताको अवलंब के विचारी को दुःखसागर में डूबने से बचाने के वास्ते कुछ प्रत्युत्तर द्वारा इसको पार करने का उपाय शोचता है जोकि वार्त्तालाप की तरह यहां प्रकट किया जाता है, सो निष्पक्षपाति सज्जनपुरुषों को जरूर आनन्द का दाता होगा।

तटस्थ—क्या पार्वती ने कुछ अनुचित काम किया, है जो आप ऐसे परिश्रम के काम में हाथ डालते हैं ?

विवेचक—अहो ! यही तो बड़ी भारी भूल है, कि अनुचित करके फेर मान में फूलना और मनोमय सुख में झूलना ! परन्तु इस में कोई आश्चर्य नहीं है ! अपने मन में माना अहंकार किसको नहीं होता है ?

यतः—उत्क्षिप्य टिट्टिभः पादावास्ते भंगभयाद्दिवः।
स्वचित्तकल्पितो गर्वः कस्य नात्रापि विद्यते ॥ १ ॥

भला ! जरा शोचना तो चाहिये कि इतनी लंबी उपाधि की दुम लगने से क्या स्त्रीत्व मिट जावेगा ? कदापि नहीं, और बालब्रह्मचर्य का तो स्वयं ही ज्ञान होगा, निज अनुभव की बातों को माने न माने आप ही जाने, या ज्ञानी जाने, हम को इस बात का क्या ज्ञान ? श्री समवायांग सूत्र में फरमाया है कि—“अकुमार भूए जे केइ कुमार भूएत्तिहं वए” जो बालब्रह्मचारी नहीं और अपने आप को

जो बालब्रह्मचारी कहता है, वह महामोहनीय कर्म बांधता है ॥

शोक ! महा शोक !! "जैनाचार्या" कहाना क्या योग्य है ? जैनमार्ग में स्त्री को "आचार्य" पदवी किसी सूत्र में नहीं चली है शरमकी बात है कि वड़े बड़े साधुओं के होते हुए भी स्त्रीमात्र को इस प्रकार शास्त्रविरुद्ध पदप्रदान होता है, परन्तु इसमें कोई आश्चर्य नहीं, अज्ञानीवर्ग का ऐसा ही काम होता है । और यह बात भी सत्य है कि जो जैसा होता है उसका वैसों के साथ ही मेल होता है—

मृगा मृगैः संग मनुव्रजंति
गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरंगैः
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः
समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ॥ १ ॥

फारसी में भी एक अकलमंद ने कहा है—"कुनद हमजिनस वा हमजिनस परवाज़, कबूतर वाकबूतर वाज़ बावाज़"

کند هم جنس با هم جنس پرواز * کبوتر با کبوتر باز با باز

अस्तु तथापि हमारी तो यही हितशिक्षा है कि अपने सुधारे के वास्ते शास्त्रविरुद्ध बातों को जलांजलि देकर शास्त्रानुसार प्रवृत्ति करनी योग्य है अन्यथा "मनस्यन्यद्वचस्यन्यत् क्रियायामन्यदेवहि" यह न्याय हो जावेगा क्योंकि स्त्रीजाति का प्रायः स्वभाव ही होता है कि मन में तो कुछ और गान होता है, वचन से कुछ और ही भान करती है । क्या वत्तीस शास्त्रों में से किसी भी सूत्र में स्त्री को आचार्यपदप्रदान करना फरमाया है ? क्योंकि ढुंढकमतानुयायी लंबे लंबे हाथ करके पुकारते हैं कि हम वत्तीस सूत्रों के अनुसार चलते हैं, वत्तीस सूत्र

सही है, बाकी के सही नही ।

तटस्थ—यह तो सेवकों ने अपने दिल को खुश करने वास्ते लिख दिया है ।

विवेचक—यदि यह बात सत्य है तो इसका सुधारा कर देना योग्य है और आगे के वास्ते अपने सेवकों को ऐसे अनुचित काम करने से रोक देना योग्य है ।

तटस्थ—अस्तु भवितव्यं भवत्येव—विचित्रा गतिः कर्मणाम्—कर्मों की गति विचित्र है, इस संसार में कर्मों के वश से जीव की क्या क्या विटंबना नहीं होती है, "गतं न शोचामि कृतं न मन्ये" परंतु यह बताओ कि जो कुछ सत्यार्थचंद्रोदय में लिखा है, सो जैन शास्त्रानुकूल जैनशैली के अनुसार यथार्थ है या नही ?

विवेचक—शोक ! अतीव शोक ! यदि जैनशास्त्रानुकूल जैनशैली के अनुसार होता, तो यह उद्यम ही क्यों होता ? अतः जो कोई मनुष्य पक्षपात की दृष्टि को त्याग कर देखेगा उसको साफ साफ नजर आवेगा, अन्यथा-"रागांधा नैव पश्यन्ति द्वेषांधाश्च तथैव हि" यह न्याय तो बना ही पड़ा है परन्तु यदि यथार्थ कथन किसी को मिथ्यात्वज्वर के प्रताप से न रुचे तो उस जीव के भाग्य की ही बात है, करीर के वृक्षमें पत्ते नहीं लगते तो इसमें वसंत ऋतुका क्या दोष है ? घू घू (उल्लू—घूवड़) पक्षी दिन में नहीं देखता तो सूर्य का इस में क्या दोष है ? जल की धारा चातकपक्षी के मुख मे नहीं पड़ती तो इस में मेघ का क्या दोष है ? अपने २ भाग्य की ही बात है !

यतः—पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो वसंतस्य किं,
नोलूकोप्यवलोकते यदिदिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ॥
धारा नैव पतंति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं,
यत्पूर्वं विधिनाललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥१॥

इस वास्ते यदि हमारा हितकारी शिक्षारूप लेख किसी को बुरा मालूम देवे तो इस में हमारा क्या दोष है ? उसके भाग्य की वात है। एक अश्वतर (खच्चर) को किसी ने पूछा कि तेरी माता कौन है ! तब वोह बडे उत्साह के साथ वोला कि घोड़ी—पूछने वाले ने फिर पूछा कि तेरा वाप कौन है ? तब मन ही मन में शरमिंदासा होकर कहता है, चल यार, यारों के साथ ठठा नहीं किया करते, इसी तरह अपनी मान वड़ाई वाह २ में फूलकर यदि कोई ठीक २ वात कहे उसको अगर मगर लेकिन के नमकीने लफजों (शब्दों) में उड़ाया जावे वह कैसी शोक की वात है ? अच्छा वह जाने हमको क्या ? हम तो शुद्धान्तःकरण पूर्वक कहते हैं कि हमारा यह लेख किसी को बुरा लगे तो हम वार २ मिथ्यादुष्कृत देते हैं॥

निक्षेप विषयिक वर्णम्।

निक्षेपों के विषय में पार्वती ने लंवा चौड़ा लिखकर वृथा पत्रे काले किये हैं, क्योंकि ढुंढियों के माने वत्तीस सूत्रों में से किसी भी सूत्र में सत्यार्थचन्द्रोदय मे लिखे मूजिव वर्णन नहीं है, यदि है तो उस सूत्र का साफ २ पाठ दिखाना ढुंढियों महाशयों का अवश्य कर्तव्य है।

तटस्थ—श्रीअनुयोगद्वार सूत्र का नाम लिखा तो है ?

विवेचक—श्रीअनुयोगद्वार सूत्र के नाम से जो लोकों को धोखा देना शुरू किया है वह भी एक बुद्धि की अजीर्णता है। बड़े भारी महात्मा विद्वान् टीकाकार महाराज के किये अर्थ न मानकर अपनी कल्पना के अर्थ कर या टब्बेवाले ने जो कुछ लिखा उसमें भी न्यूनाधिक करके अपनी कल्पना के अर्थ कर लिये हैं, परन्तु यह नहीं शोचा है कि जो कुछ बालावबोधादि के आश्रय से हम अपना टट्टू चलाये जाते है वह भी तो पांचमें आरे में बलकि टीकाकार महात्माओं के होने के समय से बहुत ही पीछे हुए हैं, तो टब्बाबनानेवाले का वचन प्रमाण, और टीकाकार का वचन अप्रमाण, यह कैसा मूढ़ता का काम है ? अफसोस है। परन्तु इस मानने में एक बड़ा भारी भेद है, जिसको और कोई मतावलम्बी जलदी से नहीं समझ सकता है, किन्तु हमतो अच्छी तरह सब भेद जानते है, वह यह कि टीका, भाष्य, चूर्णि, और निर्युक्ति संस्कृत प्राकृत में होती है उस में ढुंढियों की दाल गलती नहीं है और न उसमें न्यूनाधिक हो सकता है, और भाषा में (टब्बे में) जैसा मन में आया लिख मारा, बस इसीलिये ढुंढकपंथ में प्रायः व्याकरण का पढ़ना मुख्य नहीं माना जाता है, क्योंकि व्याकरण के पढ़ने से तो फिर "छीके बैठी देवी चने चावे' वाला वचन प्रमाण रह नही सकता है, परन्तु व्याकरण के पढ़े विना अर्थ का पूरा पूरा परमार्थ मालूम नही होसकता है, इतना ही नहीं बलकि अर्थ का अनर्थ हो जाता है, अपने पुत्र को शिक्षा देता हुआ पिता कहता है।

"यद्यपि बहु नाधीतं तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकृत् शकृत् सकलं शकलम्" ॥

और इसी वातके लिये श्रीप्रश्नव्याकरणादि सूत्रों में व्याकरण के पढ़ने की आज्ञा शास्त्रकार ने फरमाई है, ऋपिराज नामा ढुंढक साधु ने भी सत्यार्थसागर के ३ पृष्टोपरि लिखा है कि-" अव पूर्ण शुद्ध शब्द शास्त्रार्थ तो समझने आता ही नहीं बुद्धि तुच्छ प्रश्न समुद्र सरीखे गंभीर बुद्धि विना कैसे समझे जाय इसवास्ते साधु श्रावकों को विद्या वा शास्त्रार्थ का जाणपणा चाहो तो व्याकर्ण तथा संस्कृत ग्रंथादि पढ़कर अनेक अपेक्षा से गुरु महाराज के उपदेश से देखो तव न्यायवंत होकर शुद्धमार्ग मुक्ति का समझो और प्रश्नव्याकर्ण सूत्र वा अनुयोगद्वारसूत्र में व्याकर्ण सूत्र पढ़ने की आज्ञा है"

और कितने ही वालाववोध और टव्वे की आदि में या अंत में साफ साफ लिखा हुआ होता है कि यह अर्थ हमने टीका के अनुसार लिखा है, इत्यादि ॥ जैसे कि श्री अनुयोगद्वारसूत्र के वालाववोधकी समाप्ति में वालाववोध के कर्त्ता ने लिखा है कि-श्रीजीवर्षि के चरण कमल में भ्रमण समान शोभर्षि के शिष्य माहन ने यह अनुयोगद्वार सिद्धांत का वालाववोध वनाया, तथा सर्व अर्थ यहां मैंने टीका मे लिखा देख कर लिखा है, परन्तु अपनी बुद्धि से स्वल्प मात्र भी नहीं लिखा है, तो भी इसमें यदि कोई असत्य लेख लिखा गया होवे तो बुद्धिमानो को शुद्ध कर लेना योग्य है ।

तथाच तत्पाठः-श्री जीवर्षिक्रमांभोजमधुलिहा शोभर्षि दीक्षितेन माहननाम्ना विरचितोयमनुयोग-

द्वारसिद्धांतबालावबोधः तथा सर्वोऽप्यत्र मया वृत्ति दृष्टोऽर्थो लिखितोऽस्तीति न तु स्वल्पोऽपि स्वमनीषिकया तथापि यत्किंचिदिह वितथ्यं भवेत्तद्बुद्धिमद्भिः शोध्यम्।

इससे सिद्ध है कि इस बालावबोध के लिखनेवाले आचार्य पांचवें आरे में टीकाकार महाराज के पीछे हुए है और वह छद्मस्थ पुरुष थे, एक छद्मस्थ के वचन मानने और अन्य टीकाकार महासमर्थवान् पुरुषों के वचन नहीं मानने ऐसी श्रद्धा आत्मार्थी धर्मार्थी भवभीरु प्राणी की कदापि नहीं हो सकती है, इसवास्ते टीका को न मानने से मनःकल्पित अर्थ के तानने से ढुंढकमतानुयायी को क्या कहना चाहिये ? इस बात का न्याय हम वाचकवर्ग के ही स्वाधान करते हैं, क्योंकि निक्षेपों के विषय मे इंद्र गोपालदारकादि के दृष्टान्त पार्वती ने लिखे हैं वह अनुयोगद्वारसूत्र के मूल में तो क्या बत्तीस सूत्रों के मूल में भी कहीं नहीं है, इस से सिद्ध है कि पार्वती ने बालावबोध से चुराये हैं और बालावबोधवाला साफ टीका के अनुसार चलता है तो फिर टीका के मानने में क्यों लज्जा आती है ? गुड़ खाना गुलगुलों से परहेज ॥

और यदि धर्मदास जी, धर्मसिंह जी, लवजी, भीषण जी आदि ढुंढियों का लिखा टब्बा ही मान्य है तो वह सत्य लिख गये हैं या असत्य इसमें क्या प्रमाण ? तथा उन्होंने अपने मतलब के अधिकारार्थ टब्बे में नहीं डाले हैं इसमें क्या प्रमाण है ? प्रत्युत उन्होंने स्वार्थ सिद्ध करने के लिये कई बातें मनःकल्पित टब्बे में लिख दीं प्रत्यक्ष दीखती है यथा रजोहरण की दसी कैसी और कितनी होवें इस का प्रमाण, रजोहरण की दंडी का प्रमाण, मुखवस्त्रिका का प्रमाण, चादर का प्रमाण, चोल पट्टक का प्रमाण इत्यादि बत्तीस सूत्रों के मूल

पाठ में कहीं भी नहीं हैं परन्तु टब्बे में कहीं कहीं अपना मनःकल्पित व्यवहार लिख मारा है ॥

भस्मग्रह का वर्णन, सोलह स्वप्न, बारां वर्ष का दुष्काल, वीरविक्रम, जंबूस्वामि चरित्र, चंदनबाला का वर्णन, मरुदेवी माता ने हाथी के होदे में केवलज्ञान पाया, सूरिकांता रानी ने परदेशी राजा को अंगूठा देकर मार डाला, महावीर स्वामी की तपस्या, वीर भगवान् का अभिग्रह, वीर भगवान् के ४२ चौमासे, महावीर स्वामी की निर्वाणभूमि, अंतगड़ सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, निरयावलिया सूत्र इत्यादि कितने ही सूत्रों के टब्बे कथा सहित कहां से लिखे गये हैं? क्योंकि बत्तीस सूत्रों के मूल में तो पूर्वोक्त बातें कहीं भी वर्णन नहीं हैं, तो अब उत्तर देना चाहिये, कि क्या केवल बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ मात्र या पाठ मात्र का ही अर्थ मानने से ढूंढकपंथानुयायीयों का गुज़ारा हो सकेगा? कदापि नहीं, तो फिर टीकाकारों पर कि, मूल में तो है नहीं टीका में कहां से आया? ऐसा कुविकल्प करके क्यों अपनी दुर्विदग्धता ज़ाहिर की जाती है? टीकाकार महाराज तो निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, गुरुपरंपरानुसार वर्णन करते हैं, और निर्युक्ति, भाष्य चूर्णि सर्व पूर्वधारी महात्माओं की रचना है, उनका तिरस्कार करके गुरुपरंपरा से बहिर्भूत धर्मदास जी आदि के कथन पर निश्चय करना इससे अधिक और क्या आभिग्रहिक मिथ्यात्व होता है? इस वास्ते केवल मूल पाठ और टब्बे के घमंड में आकर उचितानुचित विना विचारे अंडं बंड लिखकर पूर्वाचार्य्यों की अवज्ञा करनी, और उनके किये प्राचीन अर्थ नहीं मानने, मनः कल्पित नये अर्थ करने और भोले भद्रिक जीवों को अपने मायाजाल मे फंसाना अच्छा

नहीं हैं, क्योंकि नय निक्षेप के नाम से जो पत्रे काले किये हैं सो अपनी चालाकी दिखाकर स्याही से अपना मुख सफेद करना चाहा है प्रथम तो—

"नैगमः संग्रहश्चैव व्यवहार ऋजु सूत्रकौ ।
शब्दः समभिरूढ़श्चा एवं भूति नयोऽमी । १ "

यह श्लोक ८ पृष्ट में लिखा है सो अशुद्ध है शुद्ध पाठ यह है ।

"नैगमः संग्रहश्चैव व्यवहारर्जु सूत्रकौ ।
शब्दः समभिरूढ़श्च एवं भूत नया अमी " ॥ १ ॥

दूसरा यह श्लोक बत्तीस शास्त्रों के मूल पाठ में से किस सूत्र का मूल पाठ है ? बताओ ! अफसोस कि पद पद में अपनी बत्तीस सूत्रों के मानने की प्रतिज्ञा से चलायमान होकर निग्रहकोटि की खाड़ में पड़ना सो क्या बात है ? सत्य है पुत्र के लक्षण पालने में से ही दिख पड़ते हैं " मतिर्गत्यनुसारिणी " इस महावाक्यानुसार अंत में उत्सूत्रप्ररूपकता का निग्रहस्थान रूप नरकखाड़े में गिरना होना ही है इसमें किसी का क्या ज़ोर चलता है किया कर्म अवश्यमेव भोगना पड़ता है ।

यदुक्तम्--"नत्थिकडाणं कम्माणं मुक्खो इत्यादि
तथा" । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतंकर्म शुभाशुभम् ।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥१॥

और सत्यार्थचन्द्रोदय पुस्तक बनाने का परमार्थ केवल श्री जिनप्रतिमा तथा श्रीजिनप्रतिमा के पूजन के उत्थापन सिवाय और कुछ भी नहीं जाहिर होता है और इसीवास्ते चार निक्षेपों का मनःकल्पित वर्णन पार्वती ने लिख मारा है, परन्तु इससे क्या ?

एक पार्वती क्या तो सब ढूंढक जैनमत से विलकुल अनाभिज्ञ हैं और ऐसी दशा में यदि ढूंढक लोक अर्थ का अनर्थ करें तो इसमें कोई आश्चर्य्य की वात भी नहीं है ॥

यतः--एकं हि चक्षुरमलं सहजो विवेकः तद्वाद्भिरेव सह संगमनं द्वितियम् । एतद्द्वयं यदि न यस्य स तत्वतोंधस्तस्यापमार्गचलने खलु कोपराधः ॥ १ ॥

और इसीवास्ते खास करके ऐसे मनुष्यों के लिये हमारी हितशिक्षा नहीं है, क्योंकि जिसकी जो आदत पड़ जाती है, प्रायः वह उपदेश द्वारा हटानी कठिन होती है, पानी को कितना ही गरम किया जावे परन्तु आखिर में फिर ठण्डा ही होजाता है, यतः—

स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्त्तुमन्यथा ।
सुतप्तमपि पानीयं पुनर्गच्छति शीतताम् ॥ १ ॥

अथवा—

यो हि यस्य स्वभावोस्ति स तस्य दुरतिक्रमः ।
श्वा यदि क्रियते राजा किं न अत्ति उपानहम् ॥ १

भावार्थ—जो जिसका स्वभाव पड़ जाता है दूर होना कठिन होता है, यदि कुत्ते को राजा वना दिया तो क्या वह जूती नहीं खाता है ? कुत्ते की दुम को चाहे वारह वर्ष नलकी में रक्खें फिर टेढ़ी की टेढ़ी, तथापि भव्य जीवों का ख्याल करके यह प्रयास फलीभूत समझा जाता है, और यदि किसी सत्यगवेषी को गुणकारी होजावे तो इसमें भी कोई आश्चर्य्य नहीं ? पार्वती की अण्ड वण्ड मनःकल्पित फांसी मे फंसने से

वहुत जीव वच जावेंगे, वस इसलिये अव निक्षेपों का अर्थ जो टीकाकार पूर्वाचार्य्य महात्मा का किया हुआ है, वैसा का वैसाही यहां लिखते हैं जिससे साक्षरवर्गमें अज्ञान से फूले हुए पेट रूप ढोल की पोल आपही जाहिर होजावेगी, पंडितजन खूव जान जावेंगे कि पार्वती की वोली विना तोली पाप की झोली ही खोली है, क्योंकि अपनी कल्पना की सिद्धि के लिये मनःकल्पित वातें लिखकर निक्षेपों का वर्णन अगड़म सगड़म लिखकर धोखा दिया है ; परंतु साफ २ नाम, स्थापना, द्रव्य, और भाव इन चारो का स्वरूप वर्णन नहीं किया है, कहां से करे ? जवकि वत्तीस सूत्रों के मूलपाठ में चार निक्षेपो का अर्थ ही नही है तो कहां से ले आवे ! क्योंकि चोरी करी हुई अन्त में पकड़ी जाती है कदाचित थोड़ा सा वर्णन कर दिया जावे तो उस शास्त्र का या टीका का नाम लेना मुश्किल होजावे, तो वलात्कार वह शास्त्र अथवा टीका माननी पड़े, इसवास्ते ऊपर ही ऊपर से कुहाड़ी मारने की शिक्षा खूव पाई है, माया करना तो स्त्री जाति का स्वभाव ही है,

तटस्थ—आपका का कहना वहुत ही ठीक है क्योंकि झूठ वोलना, विना विचारा काम करना, माया फरेव का करना, मूर्खता करनी, अतिलोभ का करना, अशुचि रहना, और निर्दय होना यह दोष प्रायः स्त्रियों में स्वभाव से ही सिद्ध होते है, यत :—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥१

सो यह पूर्वोक्त दोष पार्वती ने अपने आप मे ठीक सिद्ध कर दिखाये हैं, देखो, वालब्रह्मचारिणी कहां कहां शास्त्रों के अर्थ के

अनर्थ करे हैं, जिसमें सत्यार्थचन्द्रोदय का निष्पक्षपातता से विचार करना ही सत्यासत्यका निर्णय करना है, बिना गुरुगमता के किताबों का बनाना, आचार्यपद का धारण करना इत्यादि स्त्रीगण के अनुचित काम का करना साहस नहीं तो और क्या है? माया का तो पूछना ही क्या है? प्रायः सत्यार्थचन्द्रोदय की सारी किताब ही माया से भरी हुई है। पूर्वाचार्य्यों के अर्थ न मानकर अपनी कल्पना से अण्ड वंड अर्थ के अनर्थ करने इससे और क्या मूर्खता होती है? मान वड़ाई के लोभ में तो फंसी ही पड़ी है, वरना मरद ढुंढिये साधुओं के विद्यमान होते हुए व्याख्यान करना, आचार्या बनना किसने फरमाया है? अशुचि का अनर्थ तो जो कुछ करती है आप ही जानती है, ऋतु के आने पर भी शास्त्राध्ययनादि का परहेज नहीं है, इससे अधिक और क्या अशुचि अपकर्म होगा? शास्त्रवचनों के उत्थापने से अपने आप का घात करना इससे अधिक कौन सी निर्दयता है।

विवेचक—अच्छा! प्रारब्ध की वात है, हम क्या करें। लो अब देखो? नाम, स्थापना, द्रव्य, और भाव का अर्थ लिख दिखाते हैं, यदि परभव का डर होवे, और अपने कल्याण का मन होवे, यथार्थ अर्थ का विचार कर सत्य का स्वीकार और असत्य का परिहार तत्काल कर देना योग्य है आगे उनकी मरज़ी, वह जानें उनके कर्म॥

नामनिक्षेपस्वरूपवर्णनम्।

अथ नामस्थापनाद्रव्यभावस्वरूपमभिधीयते तत्रादौ नामस्वरूपं यथा—

यद्वस्तुनोभिधानं स्थितमन्यार्थे तदर्थ निरपेक्षं

पर्यायानभिधेयं च नाम यादृच्छिकं च तथा ॥ १ ॥
विनेयानुग्रहार्थ मेतद्व्याख्या—यद्वस्तुन इंद्रादिरभिधान मिंद्र इत्यादि वर्णावली मात्र मिदमेव 'आवश्यक'लक्षण वर्णचतुष्टयावली मात्रं यत्तदोर्नित्याभिसंबंधात् तन्नामेति संटंकः । अथ प्रकारांतरेण नाम्नो लक्षणमाह स्थितमन्यार्थे तदर्थनिरपेक्षं पर्यायानभिधेयं चेति तदपि नाम यत् कथं भूतमित्याह अन्यश्चासावर्थश्चान्यार्थो गोपालदारकादि लक्षणः तत्र स्थितं अन्यत्रेंद्रादावर्थे यथार्थत्वेन प्रसिद्धं तदन्यत्र गोपालदारकादौ यदारोपितमित्यर्थः अतएवाह तदर्थ निरपेक्षं इति तस्येंद्रादिनाम्नोर्थः परमैश्वर्यादि रूपस्तदर्थः सचासावर्थश्चेति वा तदर्थस्तस्य निरपेक्षं गोपालदारकादौ तथा तदर्थस्याभावात् पुनः किं भूतं तदित्याह पर्यायानभिधेयमिति पर्यायाणां शक्रपुरंदरादीनां अनभिधेयमवाच्यं गोपालदारकादयोहींद्रादिशब्दैरुच्यमाना अपि शचीपत्यादिरिव शक्रपुरंदरादिशब्दैनाभिधीयंते अतस्तन्नामापि नाम तद्वतोरभेदोपचारात पर्यायानभिधेयमित्युच्यते च शब्दान्नाम्न एव लक्षणान्तरसूचकं शचीपत्यादौ प्रसिद्धं तन्नाम वाच्यार्थशून्ये अन्यत्र गोपालदारकादौ यदारोपितं तदपि नामेति तात्पर्यं

तृतीय प्रकारेणापि लक्षणमाह याहच्छिकं च तथेति तथाविध व्युपत्ति शून्यं डित्थकपित्थादि रूपं याहच्छिकं स्वेच्छया नाम क्रियते तदपि नामेत्यार्यार्थः ॥

॥ स्थापनानिक्षेपस्वरूपवर्णनम् ॥

स्थापनालक्षणं च सामान्यत इदम् ।
यत्तु तदर्थवियुक्तं तदभिप्रायेण यच्च तत्करणि ।
लेप्यादि कर्म तत् स्थापनेति क्रियतेऽल्पकालं च॥२ इति

विनेयानुग्रहार्थमत्रापि व्याख्या । तु शब्दो नामलक्षण स्थापनालक्षणस्य भेदसूचकः सचासावर्थश्च तदर्थो भावेंद्रभावावश्यकादि लक्षणस्तेन वियुक्तं रहितं यद्वस्तु तदभिप्रायेण भावेंद्राद्यभिप्रायेण क्रियते स्थाप्यते तत् स्थापनेति संबंधः । किं विशिष्टं यदित्याह। यच्च तत्करणि तेन भावेंद्रादिना सहकरणि साहश्यं तस्य तत्करणि तत्सहशमित्यर्थः । च शब्दात्तदकरणि चाक्षादि वस्तु गृह्यते अतत्सहशमित्यर्थः । किं पुनस्तदेवं भूतं वस्त्वित्याह । लेप्यादि कर्मेति । लेप्यपुत्तलिकादीत्यर्थः। आदि शब्दात् काष्ठपुत्तलिकादि गृह्यते। अक्षादि अनाकारं च । कियंतं कालं तत् क्रियत इत्याह। अल्पः कालो यस्य तदल्पकालमित्वरकाल मित्यर्थः । च शब्दाद्यावत्कथिकं शाश्वतप्रतिमादि ।

यत्पुनर्भावेंद्राद्यर्थरहितं साकारमनाकारं वा तदर्थाभिप्रायेण क्रियते तत् स्थापनेति तात्पर्यमित्यार्यार्थः।

नामस्थापनानिक्षेपभेदवर्णनम्।

" प्रसंगान्नामस्थापनयोर्विशेषः प्रतिपाद्यते " अत्र नामस्थापनयोरभेदं पश्यन्निदमाह " नाम ठवणाणं कोपइविसेसोत्ति " नामस्थापनयोः कः प्रतिविशेषो न कश्चिदित्यभिप्रायः। तथाह्यावश्यकादि भावार्थशून्ये गोपालदारकादौ द्रव्यमात्रे यथा आवश्यकादि नाम क्रियते तत्स्थापनापि तथैव तच्छून्ये काष्ठकर्मादौ द्रव्यमात्रे क्रियतेऽतो भावशून्ये द्रव्यमात्रे क्रियमाणत्वा विशेषान्नानयोः कश्चिद्विशेषः। अत्रोत्तरमाह। " नामं आवकहियमित्यादि " नाम यावत्कथिकं स्वाश्रयद्रव्यस्यास्तित्वकथां यावदनुवर्त्तते न पुनरंतराप्युपरमते। स्थापना पुनरित्वरा स्वल्पकालभाविनी वा स्याद्यावत्कथिका वा। स्वाश्रयद्रव्ये अवतिष्ठमानेपि काचिदंतरापि निवर्त्तते काचित्तु तत्सत्तां यावदवतिष्ठते इति भावस्तथाहि—नाम आवश्यकादिकं मेरु जंबूद्वीप कालिंग मगध सुराष्ट्रादिकं च यावत् स्वाश्रयो गोपाल दारकदेहादिः शिलासमुच्चयादि र्वा समस्ति तावदव तिष्ठत इति तद्यावत्कथिकमेव। स्थापना तु आवश्यक-

त्वेन योग्यः स्थापितः स क्षणांतरे पुनरपि तथाविध प्रयोजनसंभवे इंद्रत्वेन स्थाप्यते पुनरपिच राजादित्वे नेत्यल्पकालवर्त्तिनी । शाश्वतप्रतिमादिरूपा तु याव-त्कथिका वर्त्तते तस्मात्तु अर्हदादि रूपेण सर्वदा तिष्ठ-तीति स्थापनेति व्युत्पत्तेः स्थापनात्वमवसेयं न तु स्थाप्यते इति स्थापना शाश्वतत्वेन केनापि स्थाप्यमान-त्वाभावादिति।तस्माद्भावशून्य द्रव्याधारसाम्येप्यस्त्यन-योः कालकृतो विशेषः । अत्राह । ननु यथा स्थापना काचिदल्पकालीना तथा नामापि किंचिदल्पकालीन-मेव गोपालदारकादौ विद्यमानोपि कदाचिदनेक नाम परावृत्तिदर्शनात् । उच्यते । सत्यं किंतु प्रायो नाम या-वत्काथिकमेव यस्तु क्वचिदन्यथोपलंभः सोऽल्पत्वान्नेह विवक्षित इत्यदोषः । उपलक्षणमात्रं चेदं कालभेदेनै-तयोर्भेदकथनमपरस्यापि बहुप्रकारभेदस्य संभवात् तथाहि । यथेंद्रादिप्रतिमास्थापनायां कुंडलांगदादि भूषितः सन्निहित शचीवज्रादिराकार उपलभ्यते न तथा नामेंद्रादौ । एवं यथा स्थापनादर्शनाद्भावः समु-ल्लसति नैवमिंद्रादिश्रवणमात्रात् । यथाच तत्स्थापनायां लोकस्योपयाचितेच्छा पूजाप्रवृत्ति समीहितलाभादयो दृश्यंते नैवं नामेंद्रादावित्येव मन्यदपि वाच्यमिति ।

द्रव्यनिक्षेपस्वरूपवर्णनम् ।

अथ द्रव्यस्वरूपमाह—भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तत् द्रव्यं तत्वज्ञैः सचेतना चेतनं कथितम् ॥ ३ ॥ व्याख्या—

तत् द्रव्यं तत्वज्ञैः कथितं यत् कथं भूतं द्रव्यं यत् कारणं हेतुः कस्येत्याह । भावस्य पर्यायस्य कथं भूतस्येत्याह । भूतस्यातीतस्य भाविनो वा भाविष्यतो वा लोके आधारभूते तत्र सचेतनं पुरुषादि अचेतनं च काष्ठादि भवाति । एतदुक्तं भवाति यः पूर्वं स्वर्गादिष्विंद्रादित्वेन भूत्वा इदानीं मनुष्यादित्वेन परिणतः अतीतस्येंद्रादि पर्य्यायस्य कारणत्वात् सांप्रतमपि द्रव्यं इंद्रादिरभिधीयते अमात्यादि पदपरिभ्रष्टामात्यादिवत् तथा अग्रेपि य इंद्रादित्वेनोत्पत्स्यते स इदानीमपि भविष्यदिंद्रादिपदपर्यायकारणत्वात् द्रव्यं इंद्रादिरभिधीयते भाविष्यद्राजकुमार राजवत् । एवमेवाचेतनस्यापि काष्ठादेस्तत् भविष्यत्पर्याय कारणत्वेन द्रव्यता भावनीयेत्यार्यार्थः ॥

भावनिक्षेपस्वरूपवर्णनम् ।

अथ भावस्वरूपमाह—भावो विवक्षितक्रियानु-

भूतियुक्तो हि वै समाख्यातः । सर्वज्ञैरिंद्रादिवदिहेंद नादि क्रियानुभवात् ॥ ४ ॥ व्याख्या—वक्तुर्विवक्षित क्रियया विवक्षितपरिणामस्य इंदनादेरनुभवन मनू-भूतिस्तया युक्तोर्थः स भावस्ततोऽभेदोपचारः सर्वज्ञैः समाख्यातो निदर्शनमाह इंद्रादिवदित्यादि यथा इंद-नादिक्रियानुभवात् परमैश्वर्यादिपरिणामेन परिण-तत्वादिंद्रादिभाव उच्यते इत्यर्थः इत्यार्यार्थः ॥

इसीप्रकार नामादि का स्वरूप श्रीहारिभद्र सूरि कि जिनका स्वर्गवास विक्रम संवत् ५८५ में हुआ है, जिनकी साक्षी अंग्रेज विद्वान्—डाकटर ए. ऐफ. रुडल्फ हार्नल साहिब तथा जर्मन प्रोफैसर हरमन जकोबी साहिब देते हैं, उन्हों ने भी इसी प्रकार वर्णन किया है—

अब शोचना चाहिये कि १.३८१ वर्ष के किये महात्माओं के अर्थ तो झूठे और आजकल के अभिमान के पूतलों के किये मनःकल्पित अर्थ सच्चे, बुद्धिहीन कदाग्रही के विना ऐसा और कौन कह सक्ता है ? बस जैसे हमने १.३८१ वर्ष के प्राचीन अर्थो का प्रमाण दिया है इसी प्रकार ढुंढकमतानुयायी को भी जो कुछ पार्वती ने मान के तान में गाना गाया है, ओर भोले भद्रिक जीवों को भरमाया है, संस्कृत या प्राकृत में प्राचीन महात्माओं के किये अर्थ दिखलाने चाहिये अन्यथा पार्वती के लेखोपरि कोई भी सुज्ञपुरुष विश्वास नहीं करेगा और यदि :—

उष्ट्राणां विवाहे तु गर्दभा वेदपाठकाः ।
परस्परं प्रशंसंति अहो रूप महोध्वनिः ॥

ऐसे पुरुष कर लेवे तो उसमें हमारी कोई क्षति नहीं है।

नय विषयिक वर्णनम्।

तटस्थ–पार्वती की करी कल्पना का पूरा २ जवाव पूर्वोक्त वर्णन से मिल गया है, वास्तविक में तो कुल पोथी का ही जवाव हो गया है क्योंकि सारी पोथी इसी तरह कुतर्कों से प्रायः भरी हुई है। तो भी पार्वती की करी कुयुक्तियों का भी कुछ विवेचन करना योग्य है, जिससे कि भोले भाले अनजान जीव पार्वती के जाल में फंस न जावें, और वाकी प्राचीनशास्त्रीयप्रमाण न होने से पार्वती का लेख तो स्वयं ही खंडित होचुका है !!!

विवेचक–६ पृष्ठ पर ३ सत्य नय लिख मारे है सो किसी भी जैनसिद्धान्त में नहीं हैं, पार्वती के लिखने का यह अभिप्राय मालूम होता है कि पहले चार नय असत्य है, इस वास्ते चार नयों का मानना असत्य है, परंतु यदि ऐसे होता तो शास्त्रकार सात नयों का कथन किस वास्ते करते ? असल वात तो यह है कि जैनशास्त्र में जो नयों का स्वरूप सप्तभंगी आदि का वर्णन है उसका परमार्थ ढुंढकपंथी जानते ही नहीं है। यदि जानते होवें तो कदापि एकांत एक वस्तु का ग्रहण और एक का निषेध न करें,जैसे कि पार्वती ने किया है तथा एकान्त वस्तु का खीचने वाला मिथ्यादृष्टि कहाता है सो पार्वती ने चार नयों को एकांत असत्य ठहराने का उद्यम किया है, इसवास्ते पार्वती के शिर पर तो मिथ्यादृष्टित्व की छाप वरावर लग चुकी है, सो तव ही मिटेगी जव सातही नयों को अपने२ स्थानोंमें यथार्थ मानेगी और जव अपने स्थानमें सव नय यथार्थ माने गये तव तो ढुंढकमत को जलांजलि वलात्कार देनी पड़ी ॥

तटस्थ—जरा कृपा करके आप नय और नयाभास के लक्षण पूर्वर्षिप्रणीत बताइये जिससे ज़रा हृदयचक्षु को खोल यदि परलोक का डर हो तो देख और विचार के अपनी अनुचित प्रवृत्ति का शुद्ध अंतःकरण पूर्वक मिथ्यादुष्कृत दे देवे नहीं तो जो कुछ हाल होवेगा मुख से कहना कठिन है ॥

विवेचक—लीजिये,

नयलक्षणं यथा—नीयते येन श्रुताख्यप्रमाण विषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः ॥ नयाभासलक्षणं ॥ स्वाभिप्रेतादंशादितरांशापलापी पुनर्नयाभासः ॥

इति प्रमाणनयतत्वालोकालंकारे ।

बस पूर्वोक्त लक्षणों से साबत होता है कि पार्वती का मानना 'नय' नहीं है, किन्तु 'नयाभास' है ? क्योंकि मदोन्मत्ता हस्तिनी की तरह अपने अभीष्ट अंश को स्वीकार अन्यांश का सत्यानाश किया है, परन्तु यह नहीं विचारा कि इस श्रद्धा के अनुसार तो सर्व व्यवहार का ढुंढियों को उच्छेद ही करना पड़ेगा । तथा पार्वती ने अपनी माया फैला कर अनजान लोगों को धोखा देने में कुछ न्यूनता नहीं की, पाठ कोई लिखा है, इशारा कोई किया है, और अर्थ कोई घसीटा है, देखो—९ पृष्ठ पर क्या लिखा है ? "इस द्रव्य आवश्यक के ऊपर ७ नय उतारीं हैं* जिस में तीन सत्य नय कही हैं यथा सूत्र । तिण्ह सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थू । अर्थ—तीन सत्य नय इत्यादि"

---

*जरा पंडितानी की पंडिताई का ख्याल इस पर भी कर लेना 'नय' शब्द पुंल्लिंग है, जिसको प्राय: सर्वत्र स्त्री लिंगमें लिख दियाहै।

विचारना योग्य है कि–तीन सत्यनय–यह किस पद का अर्थ किया है ? क्योंकि पाठ में तो 'सद्द' लिखा है जिसका अर्थ 'शब्द' होता है और जिसका तात्पर्य्य यह है कि तीन 'शब्दनय' हैं इससे अर्थापत्ति यह सिद्ध होता है कि प्रथम के चार 'अर्थनय' हैं, तात्पर्य यह है कि प्रथम के चार नय अर्थ की प्रधानता रखते है, और आगे के तीन नय शब्द की प्रधानता रखते हैं बस इसी बात से पार्वती का चाहा असत्य या अवस्तु शशशृंग होगया ? क्योंकि जो द्रव्य को अवस्तु प्रतिपादन करने का पार्वती ने प्रयास किया सो बिलकुल निष्फल होगया, और अनुयोगद्वार सूत्र में जो अवस्तु कहा है सो सर्वथा द्रव्य को अवस्तु नहीं कहा है, अपितु आगम से द्रव्य आवश्यक को अवस्तु कहा है, परन्तु पार्वती ने थोड़ा पाठ मात्र लिखकर दिल मे पाप होने से दान देती कपिला दासी की तरह अपने हाथ को पीछे खींच लिया मालूम देता है ।

तटस्थ–"द्रव्यनिक्षेप अवस्तु नहीं है" क्या दुनिया में सब के सब ही मूर्ख हैं ? नहीं ? नही ? विचारशील पुरुष भी दुनियां में बहुत हैं और इसीवास्ते "बहुरत्ना वसुंधरा" कहाती है सो ऐसे सुज्ञरत्नपुरुषों के उपकारार्थ आगे का पाठ भी लिख दिखाना योग्य है जिस से कि पार्वती की चालाकी भी ज़ाहिर होजावे ।

विवेचक–लीजिये पूर्वाचार्य्यकृत अर्थसहितपाठ पढ़िये :–

" तिण्हं सद्दणयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थू कम्हां जइ जाणए अणुवउत्ते न भवइ "–

भावार्थ–तीन शब्दनय के मत में जानकार होकर उपयोग रहित होना अवस्तु अर्थात् असम्भव है, क्योंकि यदि जानकार है तो उपयोगरहित नहीं होसक्ता है यही बात टीकाकार ने भी फर-

माई है। तथाहि :-

"तिण्हं सद्दणयाणमित्यादि शब्दप्रधाना नयाः शब्द-नयाःशब्दसमभिरूढैवंभूतास्ते हि शब्दमेव प्रधानमिच्छं-तीत्यर्थं तु गौणं शब्दवशेनैवार्थ प्रतीतेस्त्रयाणां शब्द-नयानां ज्ञायकोथ चानुपयुक्त इत्येतदवस्तु न संभवती-दमित्यर्थः। कम्हेति कस्मादेवमुच्यते इत्याह। यदि ज्ञायकस्तर्ह्यनुपयुक्तो न भवति ज्ञानस्योपयोगरूपत्वा-दिदमत्र हृदयं। आवश्यकशास्त्रज्ञस्तत्रचानुपयुक्त आ-गमतो द्रव्यावश्यकमिति प्राक् निर्णीतमेवं चामी न प्रतिपद्यन्ते यतो यद्यावश्यकशास्त्रं जानाति कथम-नुपयुक्तोनुपयुक्तश्चेत् कथं जानाति ज्ञानस्योपयोग-रूपत्वात्"।

और शास्त्र अनुयोगद्वार भी शब्दनय की अपेक्षा अवस्तु फरमाता है, अर्थनय की अपेक्षा नहीं, " तिण्हं सद्दनयाणमिति वचनात् " इसलिये द्रव्यनिक्षेप को सर्वथा अवस्तु मानना जैन-शैली से बाहिर होना है, यदि शास्त्रकारका सर्वथा ही द्रव्यनिक्षेप को अवस्तु फरमाने का अभिप्राय होता तो, श्रीपन्नवणाजी सूत्रादि सूत्रों में पंदरह भेद सिद्ध के प्रतिपादन करने की क्या जरूरत थी? भाव की अपेक्षा तो सब एक ही समान हैं फिर स्वलिंगसिद्ध अन्यलिंगसिद्ध, इत्यादि भेद से शास्त्रकार भावातिरिक्त कोई अन्य वस्तु फरमाते हैं या नहीं? यदि फरमाते हैं तो द्रव्य का सर्वदा अवस्तु प्रतिपादन करना अपने ही हाथों से अपना मुंह काला करने

के सिवाय अन्य कुछ हो सकता ? नहीं ! नही !

तथा श्रीठाणांगसूत्र के चौथे ठाणे में " दव्व सच्चे " द्रव्य सत्य कहा है ।

तथा श्री ठाणांगसूत्र के पांचवें ठाणेमें जो आगे को देवता होने वाला होवे उसको " भवियदव्वदेवा " अर्थात् भावि द्रव्य-देव कहा है।

तथा श्रीसूत्रकृतांग सूत्र के दूसरे अध्ययन की १५वीं और १७ वीं गाथा में मोक्ष जाने योग्य भव्यजीव को तथा मुक्ति जाने योग्य साधु को द्रव्य फरमाया है ।

अरे ! ऐसे २ प्रत्यक्ष सूत्रों के पाठ हैं, फिर भी द्रव्यनिक्षेप को सर्वथा निषेध करना, कितनी शर्म की वात है ?

श्री जिनेश्वरदेवका द्रव्यनिक्षेप वंदनीय है।

श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र में श्रीतीर्थङ्कर के जन्मसमय में तथा निर्वाणसमय मे प्रकट वंदना नमस्कार करने का पाठ है, वोह वंदना नमस्कार किस निक्षेप को है ? ज़रा पक्षपात की ओट से वाहिर निकलकर विचारना योग्य है, जिससे अन्तरीय खोट निकल जावे, और परमाधार्मिक की चोट से वचा जावे, क्योंकि जन्म समय में (यावत् केवलज्ञान नहीं होता तावत्पर्यन्त) भावनिक्षेप तो नहीं है, द्रव्यनिक्षेप ही है, तथा निर्वाणसमयमें भी भावनिक्षेप नहीं है, केवल तीर्थंकर महाराज का शरीरमात्र ही मौजूद है सो द्रव्यनिक्षेप है और दोनों ही समय में वंदना नमस्कार का पाठ है, तो अब विचार करो कि "द्रव्यनिक्षेप अवस्तु है,वंदना नमस्कार के लायक नहीं" यह कथन केवल पानी के मथन करने समान निष्फल होगया कि नहीं ? जरूर होगया, अन्यथा शास्त्र का कथन

झूठा ठहरेगा, और यह तो कल्पांतकालमें भी नहीं होसकता है कि ढूंढकवचन तो सत्य होवे और शास्त्र का वचन असत्य होवे। तथापि आभिनिवेशिक मिथ्यात्व के ज़ोर से जमालि की तरह अपना कदाग्रह न छोड़ें, और अशुभकर्म को जोड़ें तो उसमें उन की मरज़ी, तथापि श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का पाठ दिखाते हैं, ज़रा मान का घूंघट ऊंचा करके देखे तो स्वयं ही ज्ञात होजावेगा, जिस समय भगवान् श्रीऋषभदेव स्वामी का जन्म हुआ उस समय शक्रेंद्र ने भगवान् श्रीऋषभदेव स्वामी को :-

"णमोत्थूणं भगवओ तित्थयरस्स आइगरस्स जाव संपाविउकामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इह गए पासउ मे भयवं तत्थगए इह गयंति कट्टु वंदइ णमंसइ" ॥

इस रीति वंदना नमस्कार किया। तथा हरिणेगमेसि नामा देवता द्वारा, हित के वास्ते, सुखके वास्ते, श्रीतीर्थंकर भगवान् का जन्ममहोत्सव करने के वास्ते जाने का अपना अभिप्राय देवताओं को मालूम किया, इस बात को सुनकर चित्तमें अतीव प्रसन्न होकर कितनेक देवता वंदना करने के वास्ते, कितनेक देवता पूजा करने के वास्ते, कितनेक देवता सत्कार करने के वास्ते, कितनेक सन्मान के वास्ते, कितनेक दर्शन के वास्ते, कितनेक कुतूहल के निमित्त, कितनेक जिनेश्वरदेव के भक्तिराग के निमित्त, कितनेक शक्रेंद्र के वचन को पालने के निमित्त, कितनेक मित्रों की प्रेरणा से और कितनेक जीत समझ के अर्थात् सम्यग्दृष्टि देवता को श्रीजिनेश्वर देव के जन्ममहोत्सव में जरूर उद्यम करना चाहिये इत्यादि निमित्तों

को चित्तमें धारण करके बहुत देवता और देवी शक्रेंद्र के पास हाजर होगये, वोह पाठ यह है :–

" हंदि सुणंतु भवंतो, बहवे सोहम्मवासिणो देवा ।
सोहम्मकप्पवइणो, इणमो वयणं हिअसुहत्थं ॥ १
आणवेइणं भो सक्के तं चेव जाव अंतिअं पाउब्भवह ।
तएणं ते देवे देवीओ अ एअमट्ठं सोच्चा हट्ठ तुट्ठ जाव हिअया–अप्पेगइआ वंदणवत्तिअं एवं पूअणवत्तिअं, सक्कारवत्तिअं सम्माणवत्तिअं दंसणवत्तिअं कोऊहलवत्तिअं जिणेसभत्तिरागेणं अप्पेगइआ सक्कस्सवयण मणुवट्टमाणा अप्पेगइआ अण्ण मण्ण मणुवट्टमाणा अप्पेगइआ जीअमेअं एवमाइत्ति कट्टु जाव पाउब्भवंति " ॥

व्याख्या–हंदि सुणतुं इत्यादि । हंत इति हर्षे सच स्वस्वामिनादिष्टत्वात् जगद्गुरुजन्ममहकरणार्थक प्रस्थानसमारंभाच्च शृण्वंतु भवंतो बहवः सौधर्मकल्प वासिनो वैमानिका देवा देव्यश्च सौधर्मकल्पपतेरिदं वचनं हितं जन्मांतरकल्याणावहं सुखं तद्भवसंबंधि तदर्थमाज्ञापयति भो देवाः शक्रस्तदेवज्ञेयं यत् प्राक् सूत्रे शक्रेण हरिनैगमेषिपुर उद्घोषयितव्यमादिष्टं

यावत् प्रादुर्भवत । अथ शक्रादेशानंतरं यद्देवविधेयं तदाह । तएण मित्यादि । ततस्ते देवा देव्यश्च एवमनंतरोदितमर्थं श्रुत्वा हृष्ट तुष्ट यावद्धर्षवशविसर्पद्धृदयाः अपि संभावनायामेकका: केचन वंदनमभिवादनं प्रशस्तकायवाङ्मनःप्रवृत्तिरूपम् तत्प्रत्ययम् तदस्माभिस्त्रिभुवनभट्टारकस्य कर्त्तव्यमित्येवं निमित्तम् एवं पूजनप्रत्ययं पूजनं गंधमाल्यादिभिः समभ्यर्चनम् एवं सत्कार प्रत्ययं सत्कारः स्तुत्यादिभि र्गुणोन्नतिकरणम् सन्मानो मानसप्रीतिविशेषस्तत्प्रत्ययम् दर्शनमदृष्ट पूर्वस्य जिनस्य विलोकनं तत्प्रत्ययम् कुतूहलं तत्र गतेनास्मत्प्रभुणा किंकर्त्तव्यमित्यात्मकं तत्प्रत्ययम् अप्येकका: शक्रस्य वचनमनुवर्त्तमानाः नहि प्रभुवचनमुपेक्षणीयमिति भृत्यधर्ममनुश्रयंतः अप्येकका: अन्यमन्यं मित्रमनुवर्त्तमानाः मित्रगमनानुप्रवृत्ता इत्यर्थः अप्येकका: जीतमेतद्यत् सम्यग्दृष्टिदेवैर्जिनजन्ममहे यतनीयम् एवमादीत्यादिकमागमननिमित्तमिति कृत्वा चित्तेऽवधार्य यावच्छंदात् अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इति ग्राह्यम् । अंतिकं प्रादुर्भवंति ॥

तथा जिससमय भगवान् श्रीऋषभदेव स्वामी का निर्वाण हुआ

उस समय शक्रेंद्र का आसन चलायमान हुआ, अवधिज्ञान से भगवान् का निर्वाण हुआ जानके मैं भी जाकर भगवान् तीर्थंकर का निर्वाण महोत्सव करूं, ऐसा दिल में निश्चय करके शक्रेंद्र ने वंदना नमस्कार किया—सो पाठ यह है :—

" तं गच्छामि णं अहंपि भगवतो तित्थगरस्स परिणिव्वाण महिमं करोमित्ति कट्टु वंदइ णमंसइ "

व्याख्या—तद्गच्छामि णामिति प्राग्वत् अहमपि भगवतस्तीर्थंकरस्य परिनिर्वाणमहिमां करोमीति कृत्वा भगवंतं निर्वृतं वंदते स्तुतिं करोति नमस्यति प्रणमति यच्च जीवरहितमपि तीर्थंकरशरीरमिंद्रवंद्यं तदिंद्रस्य सम्यग्दृष्टित्वेन नामस्थापनाद्रव्यभावार्हतां वंदनीयत्वेन श्रद्धानादिति तत्त्वम् ॥

तथा पूर्वोक्त रीति वंदना नमस्कार करके सर्व सामग्री सहित जहा अष्टापद नामा पर्वत है जहां भगवान् तीर्थंकर का शरीर है, वहां शक्रेंद्र आया, आकरके उदास हो आनंदरहित अश्रु (इंझु) करके भरे हैं नेत्र जिसके ऐसा होया हुआ शक्रेंद्र तीर्थंकर के शरीर को तीन प्रदक्षिणा देता है, प्रदक्षिणा देकर न बहुत नज़दीक और न बहुत दूर इस रीति योग्यस्थान में शुश्रूषा करता हुआ यावत् सेवा करता है। तथा च तत्पाठ :—

" जेणेव अट्ठावए पव्वए जेणेव भगवओ तित्थ-गरस्स सरीरए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता विमणे

णिराणंदे अंसुपुण्णणयणे तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेइ २त्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सूस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ" ॥

व्याख्या—यत्रैवाष्टापदःपर्वतःयत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य शरीरकं तत्रैवोपागच्छाति । अत्र सर्वत्रातीत निर्देशे कर्त्तव्ये वर्त्तमाननिर्देशा स्त्रिकालभाविष्वपि तीर्थकरेष्वेतन्न्याय प्रदर्शनार्थमिति । नाहि निर्हेतुका ग्रंथकाराणां प्रवृत्तिरिति। उपागत्य च तत्र यत्करोति तदाह। उवगच्छित्ता इत्यादि :—

उपागत्य विमनाः शोकाकुलमनाः निरानंदोऽश्रु पूर्णनयन स्तीर्थकरशरीरकं त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणं करोतीति प्रागूवत् नात्यासन्ने नातिदूरे शुश्रूषन्निव तास्मिन्नप्यवसरे भक्त्याविष्टतया भगवद्वचन श्रवणेच्छाया अनिवृत्तेः यावत्पदात् णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइत्ति परिग्रहः। अत्र व्याख्या। नमस्यन् पंचांग प्रणामादिना अभि भगवंतं लक्षीकृत्य मुखं यस्य स तथा । विनयेनांतर्बहुमानेन प्रांजलि कृत इति प्रागवत् पर्युपास्ते सेवते इति ॥

तटस्थ—आपके सूचन किये प्रमाण अतीव बलवत्तर हैं, बस ! द्रव्यनिक्षेपा जैनसूत्रानुसार अवश्यमेव वंदनीय सिद्ध होगया और

इससे पार्वती के किये असत्य खंडन का खंडन होकर सत्य सत्य बात का मंडन भी होगया, अब तो इस बात पर पार्वती को श्री चौबीस महाराज की जय बोल देनी योग्य है ॥

विवेचक—आप क्या कहते है ? नाम और स्थापना निक्षेप का भी तो पार्वती ने निषेध किया है । देखो सत्यार्थचंद्रोदय के नवमें पृष्ठोपरि "तातें यह दोनों निक्षेपे अवस्तु हैं कल्पनारूप हैं क्योंकि इनमें वस्तु का न द्रव्य है न भाव है और इन दोनों नाम और स्थापना निक्षेपों में इतना ही विशेष है कि नामनिक्षेप तो यावत् काल तक रहता है और स्थापना यावत्काल तक भी रहे अथवा इतरिये (थोड़े) काल तक रहे क्योंकि मूर्त्ति फूट जाय टूट जाय अथवा उसको किसी और की थापना मान ले कि यह मेरा इंद्र नहीं यह तो मेरा रामचंद्र है वा गोपीचंद्र है, वा और देव है, इन दोनों निक्षेपों को सात नयों में से ३ सत्य नय वालों ने अवस्तु माना है क्योंकि अनुयोगद्वारसूत्र में द्रव्य और भाव निक्षेपों पर तो सात सात नय उतारी हैं परन्तु नाम और स्थापना पै नहीं उतारी है इत्यर्थः" इत्यादि :—

बस अब कहिये ! भगवान् के नाम की जय बोलनी या भगवान् का नाम लेना पार्वती तथा ढुंढियों के वास्ते मुश्किल होगया या नहीं ? परन्तु चिंता मत करो, जैनशास्त्रानुसार नाम और स्थापना निक्षेप को भी पूर्वोक्त श्रीजिनेश्वरदेव के द्रव्यनिक्षेपवत् वंदनीय सिद्ध कर देवेंगे जोकि ढुंढियों को बलात् मंजूर करना पड़ेगा, और पार्वती को लिखे असत्य का पश्चात्ताप प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना पड़ेगा, अन्यथा विराधकों की कोटि में पड़ा रहना पड़ेगा, जमालि वत् ॥

नाम स्थापना अवस्तु नहीं है।

लो ज़रा ख्याल करो ! प्रथम पार्वती के लेख की यत्किंचित् समालोचना करते हैं नाम और स्थापना को सर्वथा कल्पित और निरर्थक सिद्ध करने का पूर्वोक्त लेख में साहस कियागया है,सो बड़ा भारी अनुचित काम किया है क्योंकि जब नाम निरर्थक ही है तो फिर मुख पर तोबरा चढ़ाये किसलिये ऋषभादि चौवीस तीर्थंकरों के नाम लिये जाते हैं ? क्योंकि कल्पित वस्तु तो ढुंढकमत में सर्वथा ही निरर्थक है और श्रीऋषभादि तीर्थंकरों के नाम जन्मसमय में उनके माता पिता ने किसी कारण को पाकर नियत किये हैं कोई खास यह नियम नहीं है कि जो तीर्थंकर होवे उनका यही नाम होवे; इसलिये नामनिक्षेप का अनादर करने से श्रीऋषभादि तीर्थंकरों के नाम का भी ढुंढियों को अनादर ही करना पड़ेगा, अन्यथा प्रतिज्ञाभ्रष्ट होना पड़ेगा ॥

भला जब नाम और स्थापना में नतो वस्तु का द्रव्य है और न भाव है तो यावत्काल और इत्वर (थोड़े) काल तक का रहना किसको पुकारा जाता है ? तथा जब ढुंढकविचारानुसार नाम और स्थापना निक्षेप का सात नयों में समवतार नहीं किया है तो "इन दोनों निक्षेपों को सात नयों में से ३ सत्य नय वालों ने अवस्तु माना है" यह पार्वती का लेख—मम माता वंध्या, मम मुखे जिह्वा नास्ति—मेरी मां वांझ है, मेरे मुख में ज़बान नहीं है, ऐसे उन्मत्तप्रलाप से कुछ अधिक उपमा के लायक हो सकता है ? नहीं ! नहीं !! तथा पार्वती ही का लेख साबित करता है कि नाम और स्थापना भी कुछ है क्योंकि जब पार्वती ने लिखा है कि सात नयों में से तीन नयवालों ने इन दोनों को अवस्तु माना है तो इससे ही सिद्ध है कि बाकी चार नयों वालों ने तो इन दोनों को जरूर

ही वस्तु माना है यदि ऐसे नहीं है तो पार्वती का लिखना कि 'तीन नयवालों ने इन दोनों को अवस्तु माना है' कदापि सिद्ध नहीं होवेगा ॥

अच्छा ! लो अब नामस्थापना के विषय में सूत्रप्रमाण भी दिखाते हैं :-

श्रीभगवती सूत्र, उववाइय सूत्र, रायपसेणीय सूत्रादि अनेक जैनशास्त्रों में तीर्थंकर भगवान् के नाम गोत्र के सुनने का भी बड़ा भारी फल लिखा है । यथा :-

" तं महाफलं खलु भो देवाणुप्पिया तहा रूवाणं अरिहंताणं भगवंताणं नाम गोयस्सवि सवणयाए " ।

इत्यादि पूर्वोक्त पाठ से अरिहंत भगवंत का नाम भी फल का देनेवाला सिद्ध होगया और श्रीठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे में नाम सत्य कहा है " णाम सच्चे " इति वचनात्—तथा श्रीठाणांगसूत्र के दशमें ठाणे में भी दश प्रकार के सत्य में नामसत्य कहा है तथाच तत्पाठः ।

" दसविहे सच्चे पण्णत्ते । तंजहा । जणवय सम्मय ठवणा णामे रूवे पडुच्च सच्चे य ववहार भाव जोगे दसमे उवम्म सच्चे य " ॥ १ ॥

दश प्रकार का सत्य तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया है सो यह है—देश सत्य (१) सम्मत सत्य (२) स्थापना सत्य (३) नाम सत्य (४) रूप सत्य (५) प्रतीत्य सत्य (६) व्यवहार सत्य (७) भाव सत्य (८) योग सत्य (९) और दशवां उपमा सत्य (१०) सूत्रों में ऐसे २ सत्य बताने वाले पाठ आते हैं, परंतु जिसकी दृष्टि में असत्य फैल रहा होवे उसको जहां तहां असत्य ही भान होता है, जैसे पीलीया रोगवाला जो कुछ देखता है उसको पीला ही दीखता है,

इसी तरह मिथ्यात्वरूप पांडु रोग के कारण शंखसमान श्वेत तत्त्व-रुचि के पदार्थ भी पीत भान होते हैं, श्रीठाणांग सूत्र के पूर्वोक्त पाठ में " स्थापना " को भी सत्य फरमाया है, और इसी तरह चौथे ठाणे में भी स्थापनासत्य फरमाया है. " ठवणा सच्चे " इति वचनात्–इत्यादि पाठ प्रायः अनेक जैनशास्त्रों में आता है जिससे नाम तथा स्थापना निक्षेप भी फलदायक सिद्ध होते हैं सूत्र में तो केवल सूचनामात्र होती है " सूत्रं सूचनकृत् " इति वचनात्–परंतु सूत्रोक्त रहस्य का पूरा २ आशय तो श्रुतकेवली, पूर्वधर, गीतार्थ पूर्वाचार्य महात्माओं के किये निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका रूप अर्थों के विना कदापि भान नहीं हो सकता है। शोक की बात है कि जैसे प्रमेही पुरुष को घृत नहीं रुचता है, ऐसे ढुंढकमतानुयायी को महात्मा पुरुषों के किये प्राचीन अर्थ रुचते ही नहीं हैं, तो बताओ ? अब क्या उपाय किया जावे ? साध्य व्याधि का उपाय हो सकता है, परंतु असाध्य का उपाय तो धन्वन्तरि भी आकर नहीं कर सकता है ॥

तटस्थ–क्या पूर्वाचार्यों के अर्थ माने विना सूत्र का आशय कदापि प्राप्त नहीं हो सकता ?

विवेचक–यदि पूर्वर्षि प्रणीत अर्थ के विना मूलमात्र से पूर्ण आशय निकल सकता है तो श्रीसमवायांग सूत्र में तथा श्रीदशाश्रुतस्कन्ध सूत्र में २१ शबले दोष फरमाये हैं जिनमें–हस्तकर्म करें तो शबल दोष (१) मैथुन सेवे तो शबल दोष (२) रात्रिभोजन करे तो शबल दोष (३) आधाकर्मी भोजन करे तो शबल दोष (४) शय्यातर का पिंड (आहारादि) भोगे तो शबल दोष (५) उद्देशिक, मूल्य लाया और सन्मुख लाया भोजन करे तो शबल दोष (६) इत्यादि बातों का निराकरण ढुंढकभाई कर देवें, अन्यथा

दुराग्रह को त्यागकर पूर्वाचार्यों का शरण मंजूर कर लेवें जिससे निस्तारा होवे । नहीं तो जमालि की तरह संसार में रुलना ही पड़ेगा ! ! तथा इस बात का भी ज़रा उनको ख्याल करना चाहिये कि यदि निर्युक्ति आदि पूर्वाचार्यों के किये अर्थ नहीं माने जावेंगे तो केवल मूल मानने के हठ से ढुंढकमतावलम्बियों के गले में बड़ा भारी लंबा रस्सा पड़ जावेगा कि जिससे मुक्त होना अतीव कठिन होगा, क्योंकि पूर्वोक्त सूत्रों के मूलपाठ से मैथुन सेवे तो शबल दोष लगता है यह सिद्ध होता है, तो इससे यही साबत होवेगा कि मैथुन सेवने से साधु चारित्र से भ्रष्ट नहीं होता है, दोष लगता है, सो आलोचना प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो जावेगा तो फिर अपघात करने की क्या जरूरत है ? और उपदेश में फरमाया जाता है कि साधु अपघात तो कर लेवे परंतु शील को खंडन न करे, अर्थात् मैथुन न सेवे ! अब बताना होगा कि शास्त्रकार के कथन का असली क्या आशय है. और उसमें प्राचीन प्रमाण के विना मनःकल्पित बात मानने योग्य कदापि न होवेगी, इसवास्ते यदि सुख और सद्गति की जरूरत है तो अभिमान को छोड़, कुगुरों की फांसी को तोड़, अपने मन को सत्वर पूर्वाचार्यों के प्रति बहुमान करने में जोड़ना योग्य है आगे उनकी मरज़ी, परंतु यह तो जरूर समझ लेना कि मरज़ी मे आवे पूर्वर्षि प्रणीत प्राचीन अर्थों को माने, और मरज़ी में आवे ना माने, तथापि नाम, स्थापना और द्रव्य इन तीनों के माने विना तो कदापि छुटकारा नहीं होवेगा, और विना इन तीनों के केवल भावनिक्षेपा शशशृंग होजावेगा, क्या नाम, स्थापना और द्रव्य के विना केवल भाव ही भाव किसी घघरीवाली के पास या किसी पगड़ी वाले के पास या किसी सिरमुंडों के पास या किसी जटाधारी के पास देखा वा सुना है ? नहीं ! नहीं ! कहां से

देखें और सुनें ? जगत् में वैसी कोई वस्तु ही नहीं है कि जो नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव निक्षेप से अर्थात् इन चार प्रकार से खाली होवे ॥ तात्पर्य—जो वस्तु दुनिया में है उसमें नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव यह चार भेद तो अवश्यमेव होवेंगे . जिसमें पूर्वोक्त चार प्रकार नहीं, वह वस्तु ही नहीं, खरशृंगवत्, जैसे गधे का शृंग नहीं है तो उसका वाचक व्युत्पत्तिमान् शुद्ध शब्द भी कोई नहीं है कि जिस नाम से खास उसही का ज्ञान होवे, जब नाम नहीं है तो उसकी स्थापना यानि शकल भी किसी किसम की नहीं हो सकती है कि जिस शकल को देखकर गोशृंगवत् खरशृंग का ज्ञान होवे; जब नाम और स्थापना नहीं तो द्रव्य पूर्वापरावस्था रूप पर्याय का आधार भी नहीं, जब नाम, स्थापना और द्रव्य नहीं तो भाव तद्भव धर्म भी नहीं, और जब नाम, स्थापना, द्रव्य, और भाव नहीं तो वह पदार्थ भी नहीं, इसी वास्ते श्री अनुयोगद्वार सूत्र में फरमाया है कि—जहां जिस जीवादि वस्तु में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावादि लक्षण जितने भेद जानने में आवें, वहां उन सर्व भेदों से वस्तु का विचार करना और जहां सर्व भेद न मालूम होवें तो वहां नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों का तो जरूर निक्षेप करना अर्थात् इन चार प्रकार से वस्तु का चिंतवन अवश्यमेव करना तथाच तत्पाठ :—

जत्थय जं जाणेज्जा निक्खेवं निक्खिवे निरवसेसं।
जत्थवि य न जाणेज्जा चउक्कगं निक्खिवे तत्थ । १ ।

व्याख्या—आवश्यकादिशब्दानामर्थो निरूपणीयः स च निक्षेपपूर्वक एव स्पष्टतया निरूपितो भवत्यतोऽमीषां निक्षेपः क्रियते तत्र निक्षेपणं निक्षेपो यथा संभव-

मावश्यकादेर्नामादिभेदनिरूपणं तत्र जघन्यतोप्यसौ चतुर्विधो दर्शनीय इति नियमार्थमाह जत्थय गाहा व्याख्या यत्र जीवादि वस्तुनि यं जानीयान्निक्षेपं न्यासं यत्तदोर्नित्याभिसंबंधात्तत्र वस्तुनि तं निक्षेपं निरूपयेन्निरवशेषं समग्रं । यत्रापि च न जानीयान्निरवशेषं निक्षेपभेदजालं तत्रापि नामस्थापनाद्रव्य भाव लक्षणं चतुष्कं निक्षिपेदिदमुक्तं भवति यत्र तावन्नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभवभावादिलक्षणा भेदा ज्ञायंते तत्र तैः सर्वैरपि वस्तु निक्षिप्यते । यत्र तु सर्वभेदा न ज्ञायंते तत्रापि नामादि चतुष्टयेन वस्तु चिन्तनीयमेव सर्वव्यापकत्वात्तस्य न हि किमपि तद्वस्तु अस्ति यन्नामादि चतुष्टयं व्यतिचरतीति गाथार्थः--

और असल में तो निक्षेपपद का यथार्थ अर्थ पार्वती ने या ढुंढकपंथानुयायी ने समझा ही नहीं है, यदि समझा होता तो इसप्रकार की मूढता ज़ाहिर न होती, जोकि नाम को निक्षेप से जुदा घसीटा है, यदि पार्वती की करी पूर्वोक्त कल्पना ठीक है तो इस विषय में जैसे हमने निक्षेपपद का अर्थ पूर्वर्षिप्रणीत पूर्वोक्त प्राचीन पाठ में लिख दिखाया है. पार्वती भी दिखा देवे ? अन्यथा मनःकल्पित बातों से पार्वती का कथन शास्त्रानुकूल तो कदापि सिद्ध नहीं होवेगा, प्रत्युत शास्त्रप्रतिकूल तो सिद्ध होही चुका है पूर्वमुनिसम्मतेरभावात् ॥ इसवास्ते शास्त्रकारों के तथा सम्यक्त्वशल्योद्धार के कर्त्ता के असली गूढ़ आशय को न समझनेवाले

ही मूढमति हैं ! जोकि विना विचारे ऊतपटांग जो कुछ दिल में आया बक दिया ॥ देखो ! पृष्ठ८ की दूसरी पंक्ति में क्या पत्थर लिख मारा है, इंद्र का नाम "सहस्रानन" किस ढुंढककोश या पुराण में लिखा है ? मालूम होता है कि लिखते समय मुख का पाटा आंख पर आगया होगा !! अजी ज़रा सोच विचार के कलम चलानी ठीक है परंतु महात्माओं की अवज्ञा करनेवालों के दिल में शोच विचार कहां से होवे ?

तटस्थ-बेशक, महात्माओं की अवज्ञा करने का और उन प्रति बहुमान न करने का यही फल होता है,इसबात पर एक दृष्टांत भी है,यथा—एक सिद्धपुत्र के दो शिष्य थे, दोनों ही गुरु का विनय करते थे, परंतु एक गुरू का बहुमान करता था अर्थात् गुरु के ऊपर एक की अंतरंग प्रीति थी, और दूसरा गुरु का बहुमान बिलकुल नहीं करता था । दोनों ही जने अष्टांगनिमित्तशास्त्र पढ़कर कुशल होगये, एक दिन की बात है कि दोनों जने घास लकड़ी आदि लेने वास्ते गये,रस्ते में चिन्ह देखकर एकने कहा कि आगे हाथी जाता है. तब दूसरे ने कहा कि यह हाथी नहीं है, हथनी है, और वह बाई आंख से काणी है, उस पर स्त्री और पुरुष सवार हैं, जिसमें औरत गर्भवती है, लाल वस्त्र उसके ऊपर है और जलदी पुत्र को जन्म देनेवाली है, पहिले ने कहा क्यों ऐसा विना देखे असंबद्ध बोलता है ? उसने जवाब दिया कि ज्ञान अनुभवसिद्ध है, आगे सब मालूम होजावेगा. दोनों कितनेक दूर आगे को गये तो सब वैसे ही देखा. और पुत्र प्रसूत हुआ दोनों को मालूम होगया. तब दूसरा—इसने यह बात कैसे जानी ? मुझको तो कुछ भी पता नहीं लगा, इस रीति आश्चर्य को प्राप्त होकर उदास होगया. दोनों जने फिरते हुए नदी किनारे पहुंचे, वहां एक

बुढ़िया जल लेने के वास्ते आई. उस बुढ़िया के बेटे को परदेश में गये बहुत समय हुआ, अब तक नहीं आया था, इसवास्ते बुढ़िया ने उन दोनों को पूछा कि मेरा बेटा कब आवेगा ? पूछने के समय बुढ़िया के सिर से घड़ा नीचे को गिर पड़ा, और फूट गया, तब उस मंदबुद्धि ने कहा कि :—

तज्जाएण य तज्जायं तण्णिभेणय तण्णिभं ।
तारूवेण य तारूवं सरिसं सरिसेण निद्दिसे ॥ १ ॥
तज्जातेन च तज्जातं तन्निभेन च तन्निभम् ।
तद्रूपेण च तद्रूपं सदृशं सदृशेन निर्दिशेत ॥ १ ॥

इस निमित्तशास्त्र के कथनानुसार तेरा पुत्र मर गया दूसरे ने कहा ऐसा मत बोल, पुत्र घर आगया है, जा बुढ़िये ! जलदी अपने घर को चली जा वृथा संदेह में मत पड़ ॥ बुढ़िया खुश होकर जलदी घर में गई पुत्र को देखा और स्नेह के साथ पुत्र से मिली.

इधर दोनों शिष्य गुरु पास पहुंच गये, इतने में धन और धोती लाकर बुढ़िया ने सत्य बोलनेवाले उस दूसरे का सत्कार किया तब वह गुरु पर क्रोध करके बोला कि आप जैसे जानकार हो के भी यदि अपने शिष्यो में इतना अंतर (भेद) करते हैं तो और का तो कहना ही क्या ? यदि अमृतमय चन्द्रमा से आग की वर्षा होवे, सूर्य से अन्धकार पैदा होवे, कल्पवृक्ष की सेवा से दारिद्र होवे, चन्दन के वृक्ष से दुर्गंध आवे, अमृत से ज़हर चढ़ जावे, सज्जन पुरुष से दुर्जनता होजावे, श्रेष्ठ वैद्य से रोग बढ़ जावे, और पानी से आग लग जावे तो इसमें किसको दोष दिया जावे ?

तब गुरु ने कहा क्यों ऐसे बोलता है ? मैंने पढ़ाने में या आम्नाय बतलाने में कोई फरक नहीं किया है. उसने जवाब दिया कि यदि आपने फरक नहीं रक्खा तो इसने हथनी आदि सब वृत्तांत यथार्थ किन तरह जाना ? और मैंने क्यो नहीं जाना ? गुरु ने पूछा कि हे भली बुद्धिवाले ! तैंने यह सब वृत्तांत किस तरह जाना ? शिष्य ने कहा, महाराज ! आपकी कृपा से चिन्ह आदि के विचार करने से- यथा पिशाव के निशान से हथनी जान ली, दाईं तर्फ से ही कहीं २ मुंह पाकर घास आदि भक्षण करने से मैंने मालूम किया कि वाम नेत्र से काणी है, पिशाव के निशान से ही स्त्री पुरुष का ज्ञान किया, तत्काल प्रसूत का होना दोनो हाथ जमीन पर लगा कर स्त्री के उठने से जान लिया, वृक्षोपरि लगी लाल सूत की तारों से लाल रंग के कपड़े का ज्ञान मैंने कर लिया, और पुत्र का होना रस्ते में स्त्री का दक्षिण पांव भारी पड़ा देखकर निश्चय कर लिया. तथा बुढ़िया के पुत्र का घर आना घड़ा जमीन से पैदा हुआ था फूटकर फिर ज़मीन के साथ मिल गया ॥ इसी प्रकार पूर्वोक्त वाक्यानुसार मैंने निश्चित किया, तब उस शिष्य की अपूर्व बुद्धि से खुश होकर गुरु ने दूसरे शिष्य को कहा कि वत्स ! यद्यपि तू अनेक प्रकार का विनय करता है, तथापि तेरा मेरे विषे बहुमान नहीं है. और इसका बहुमान है. और वैनयिकी बुद्धि भी भली प्रकार बहुमान पूर्वक विनय करने से ही तेज़ होती है, इसवास्ते इसमें मेरा कोई दोष नहीं है. इति ॥

पूर्वोक्त दृष्टांत से सिद्ध होता है कि महात्माओं प्रति बहुमान न करने से शास्त्र का परमार्थ पूरा २ फलीभूत नहीं होता है ।

तटस्थ--इसीवास्ते पूर्वाचार्यों प्रति जो अनादरता दिल में बैठी हुई है उसको त्याग शोच विचार करे तो आपही आप शास्त्रा-

मृतक ढूंढक गोपाल स्वामीजी

मोहनऋषि मणिलालजी नथुजीऋषि

ढूंढनी पार्वतीजी उनकी चेलीजीवी.

चित्रशाळा, पुणें.

नुसार निक्षेपों का याथातथ्य ज्ञान होने से कभी भी दिलमें यह शंका नहीं रहेगी कि स्थापना में चार निक्षेप किस तरह हो सकेंगे॥

स्थापना में चारों ही निक्षेप का वर्णन ।

पूर्वोक्त श्रीअनुयोगद्वार सूत्र की आज्ञानुसार जब हरएक वस्तु चार २ निक्षेप से विचारनी योग्य है तो क्या स्थापना बाकी रह गई ? जो कुतर्क का जाल में भोले आदमी को फंसाने का उद्यम किया है ? देखो ! जिस किसी वस्तु की स्थापना (आकृति-शकल) देखी जावेगी उसी वक्त उस वस्तु के चारों ही निक्षेप (भेद) समझने में आवेंगे, तबही वह स्थापना उस वस्तु की कही जावेगी, और उसका यथार्थ ज्ञान भी तबही होवेगा यदि ऐसा न होवे तो हाथी की स्थापना से घोड़े का ज्ञान होना चाहिये, सो तो कभी भी नहीं होता है, इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि स्थापना में भी किसी अपेक्षा वोही चार निक्षेप होते हैं, जोकि वस्तु मे होते है, क्योंकि स्थापना उस वस्तु का एकांश है. और देश मे सर्व उपचार होना यह तो न्यायशास्त्र की प्रथा ही है. इसीतरह नामादि मे भी ख्याल कर लेना. जैसे कि—पार्वती—इस नाम को सुनते ही किसी ने यह नहीं निश्चय कर लेना है कि अमुका शंकरपत्नी है, परंतु नामके साथ ही स्थापना द्रव्य और भाव से विचार करने मे मालूम होजावेगा कि यह ठीक ईश्वरपत्नी है, तो जरूर ही उसके मानने वाले उसी वक्त सिर झुकावेंगे. और यदि गिरिजा वाले भेद न घटेंगे तो जान लेवेंगे कि अमुका शंकरपत्नी पार्वती नही है, किन्तु कोई अन्य औरत है॥ इसी प्रकार पार्वती सती के मानने वाले पार्वती का नाम सुनकर जब उसके ही नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव का उनके दिल में निश्चय होवेगा तो झट सिर झुकावेंगे, परंतु शंकरपत्नी पार्वती मालूम होने

पर कदापि निज सती पार्वती की बुद्धि करके सिर न झुकावेंगे॥ तथा पार्वती की मूर्त्ति को देखकर जैसे सती पार्वती के माननेवालों को एकदम पार्वती संबंधी निक्षेप का ज्ञान होवेगा, वैसी मूर्त्ति को देखकर शंकरपत्नी पार्वती के मानने वालों को कदापि न होवेगा इसी प्रकार शंकरपत्नी पार्वती की मूर्त्ति को देखकर जो कुछ उत्साह उसके मानने वालों को आवेगा, ढुंढियों को कदापि न आवेगा, तो शोचना चाहिये कि उसमें क्या कारण है?

तटस्थ—बस सिद्ध होगया कि जिसकी मूर्त्ति है उसकी वास्तविकता की ओर बलात् आकर्षण होजाता है और अपने मनोभिलषित पदार्थ का ज्ञान होने से झट सिर झुकाना आदि अपने प्रणामों का उस तरफ आकर्षण होजाता है, और झुक २ के नमस्कार किया जाता है, परंतु इस तात्पर्य के समझने वालों की बलिहारी है॥

विवेचक—इतना ही नहीं एक और बात भी सोचने लायक है कि नाम के लेने से तो एकदम वास्तविकता पर मन का आकर्षण नहीं भी होता है, परंतु मूर्त्ति के देखने से तो एकदम उसी तरफ दृष्टि होजाती है. जिसका अनुभव जगत्प्रसिद्ध है. कहने सुनने की कोई अधिक आवश्यकता नहीं है. बस इसी तरह श्रीजिनेश्वरदेव की बाबत भी विचार करना योग्य है, नतु वृथा हठ ही हठ करना योग्य है, जैसे श्रीजिनेश्वरदेव का पवित्र नाम श्रीऋषभदेवजी या श्रीशांतिनाथ जी, या श्रीपार्श्वनाथ जी, या श्रीमहावीर स्वामी जी लिया जाता है उसी वक्त उनके चारों निक्षेप की तर्फ ख्याल दौड़ता हुआ झट नियमित वस्तु में जा अटकता है, परंतु श्रीपार्श्वनाथ स्वामी का नाम लेने से श्रीशांतिनाथ स्वामी का,

SHIVA AND
COPYRIGHT

यां श्रीमहावीर स्वामी का नाम लेने से श्रीऋषभदेव स्वामी का भाव कदापि नहीं आता है, इसका क्या कारण है? क्योंकि ढुंढक भाइयों के हिसाव से तो भावही भाव है और कोई निक्षेप तो काम में आता ही नहीं है, और भावनिक्षेप तो सर्वमें एकही समान है, फिर क्या कारण है कि एक तीर्थंकर का नाम लेने से दूसरे तीर्थं-कर में भाव नहीं जाता है? किंतु खास उन ही महात्मा का ख्याल हो जाता है कि जिन का नाम लिया जाता है॥ वस इससे साफ ज़ाहिर है कि नामादिका आपस में जरूर कुछ न कुछ संवंध है। इसी तरह श्रीवीतरागदेव की स्थापना प्रतिमा के देखने से जिन तीर्थंकर भगवान् की वह प्रतिमा होती है उन ही महात्मा का ख्याल वह कराती है, नामवत्॥ वलकि नाम से भी ज़्यादा, क्योंकि नाम तो एक अंश रूप है, और प्रतिमामें नाम और स्थापना रूप दो अंश प्रत्यक्ष भान होते हैं। यदि नाम मात्र ही अपनी वास्तविकता को पहुंचा सकता है तो क्या नाम और स्थापना दो नहीं पहुंचा सकते हैं? जरूर अतीव सुगमता के साथ पहुंचा सकते हैं। और इसीवास्ते स्तुतिकारों ने इस प्रकार भगवान् की स्तुति की है कि—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चारों प्रकार से तीन जगत् के जीवों को पवित्र करने वाले अर्हन् भगवंतों की सर्व क्षेत्र में और सर्व काल में हम स्तुति उपासना सेवा करते है॥

यदुक्तम्—नामाकृतिद्रव्यभावैः पुनतास्त्रिजगज्जनम्।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हतः समुपास्महे॥१॥

तात्पर्य यह है अर्हन् भगवंत के चारों ही निक्षेप जगद्वासी जीवों को उपकार करते हैं। कितनेक जीवो को नाम स्मरण से उपकार होता है, कितनेक को स्थापना से, कितने को द्रव्य से और

कितनेक को भाव से उपकार होता है। इसवास्ते चारों ही निक्षेप को मानना सम्यग्दृष्टि का लक्षण है। परंतु एक दो का मानना और बाकी का निषेध करना सम्यग्दृष्टिका काम नहीं है॥

तटस्थ—शास्त्रानुसार चारों ही निक्षेप का मानना सिद्ध हो चुका और गुप्ततया (चोरी) ढुंढिये भी मानते हैं परंतु कदाग्रह के वश से प्रकटतया नहीं मानते हैं॥

विवेचक—लो देखो! हम प्रगट करके दिखाते हैं। भावको तो ढुंढये भाई साहिब मान्य करते ही हैं, और नामको रात्रि दिव रटते हैं, इस से दो निक्षेप तो सिद्ध हो चुके, बाकी द्रव्य और स्थापना उनकी बाबत पूर्व सविस्तर लिखा गया है, तो भी थोडी सी बात और दिखाकर ढुंढियों का द्रव्य और स्थापना का मानना ढुंढियों के नित्य कृत्यों से तथा पार्वतीके लेखसे ही सिद्ध कर दिखाते हैं॥

"श्रीजिनेश्वर देव के चारों ही निक्षेप माननीय और वंदनीय हैं"।

जब चतुर्विंशतिस्तव (लोगस्स) पढ़ते हैं, तब "अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसं पि केवली" पढ़ते हैं जिसका अर्थ चउवीस अरिहंतों की मैं कीर्त्तना करूंगा सो वह चउवीस भगवान् कि जिनका "उसभमजिअंचवंदे" इत्यादि पाठ द्वारा ऋषभदेव को वंदना करता हूं, अजितनाथ को वंदना करता हूं, प्रत्यक्ष नाम उच्चारण किया जाता है, वर्त्तमान कालमें अरिहंत के भावनिक्षेपे तो है नहीं, किंतु सिद्ध के भावनिक्षेपे हैं, तो आप ही अपने दिल में सोच लेवें कि केवल भावनिक्षेप को मानके अन्य नामादि निक्षेपका निषेध करना कैसी अज्ञानता है?।

तटस्थ—जो चउवीस प्रभु मोक्ष को प्राप्त हो गये हैं उनको

वंदना होती है ऐसा उनका-मानना है पार्वती जी ने पृष्ठ ८५ में लिखा है कि तीर्थंकरपद के गुण पूर्वले ग्रहण करके सिद्धपदमें नमस्कार की जाती है॥

विवेचक—नवतो " अरिहंते कित्तइस्सं " के वदले " सिद्धे कित्तइस्सं " पढ़ना चाहिये, क्योंकि वह तो सिद्ध हो गये है। तथा " चउवीसंपि केवली " के ठिकाने " अणंते पि केवली " पढ़ना होगा, क्योंकि सिद्ध तो अनंत हैं, इसवास्ते यह मानना ठीक नहीं है।

तटस्थ—जघन्यपद २० तीर्थंकर तो अवश्य ही मनुष्य क्षेत्र में होते है, ऐसा पार्वती जीने सत्यार्थ चंद्रोदय के ८४ पृष्टोपरि लिखा है इसवास्ते अरिहंतपद करके उनको वंदना मानी जावे तो क्या दोष है ?।

विवेचक—यह भी उनका मानना ठीक नहीं है, क्योंकि आज कल भरत ऐरावत क्षेत्र में तीर्थंकर कोई नही है। तथा पांच भारत और पांच ऐरावत क्षेत्र में मिल के दश ही तीर्थंकरों का एक समय होना होसकता है, अधिक नहीं, और यदि महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा लेवें तो वहां भी उनके विचारानुसार जघन्य वीस तीर्थंकर कदापि नही होसकते हैं, किंतु उत्कृष्टपदे वीस होसकते हैं क्योंकि महाविदेह क्षेत्रों में एक समय उत्कृष्टे वीस तीर्थंकरों का जन्म होता है, इससे अधिक नहीं, जब ऐसे हुआ तो जिनका जन्म एक समय में हुआ है भावनिक्षेप में भी वोही एक समय में विद्यमान हो सकते हैं, और नहीं, इसवास्ते जघन्यपद में वीसका मानना ढुंढकपंथ को हानिकारक हो जावेगा, क्योंकि जब जघन्यपद में वीस मानेंगे तो उत्कृष्टपदमें -उससे अधिक जरूर ही मानने पड़ेंगे, और अधिक मानना इस मत में एक वड़ा भारी रोग पैदा करना है.

क्योकि बीस से अधिक तीर्थंकरों का एक समय में जन्म जैनशास्त्रानुसार कदापि नहीं होसकता. जब जन्मही एक समय बीससे अधिक का नहीं होसकता तो केवलज्ञान भी एक समय बीस तीर्थंकरों से अधिक को नहीं होसकता है, क्योंकि तीर्थंकरों का एक सदृश ही आयु होता है. और केवलज्ञान हुए विना तीर्थंकर मानना उनकी श्रद्धा नहीं है, फिर बताओ जघन्यपद में बीस तीर्थंकर का मानना उत्कृष्टपद के माने विना सिद्ध होसकता है? कदापि नहीं ॥ और उत्कृष्टपद माना तो द्रव्यनिक्षेप बलात्कारसे गले में पड़ गया, जब द्रव्यनिक्षेप मानलिया तो फिर ऊंचे २ हांथ करके नाम, स्थापना और द्रव्यनिक्षेप वंदनीय नहीं हैं पुकारना उजाड़ में रोने और अपने नयनों के खोने के सिवाय और क्या है?

तथा महाविदेह में आजकाल अमुक २ नाम के बीस तीर्थंकर भावनिक्षेपे अर्थात् केवलज्ञान अवस्था में चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी के गुणसहित बारह गुणें करी विराजमान विद्यमान हैं. ऐसा बत्तीस सूत्रों में से किस सूत्र के मूलपाठ में वर्णन है ? और एक यह भी बात विचारने योग्य है कि यदि महाविदेह के तीर्थंकरों की यहां अपेक्षा होवे तो "उसभ मजिअं च वंदे" इत्यादि पाठ के स्थान में महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के नाम का पाठ पढ़ना चाहिये ॥ यह तो कदापि नहीं होसकता कि नाम तो ऋषभदेवजी का लिया जावे, और वंदना श्रीसीमंधरस्वामी को मानी जावे, और यदि बीस विहरमान के नाम लिये जावें तो "चउवीसत्था" के स्थान में "वीसत्था" मानना पड़ेगा ॥ और जब "वीसत्था" माना जावेगा तो "चउवीसत्था" उड़ जावेगा, और चउवीसत्था के उड़ने से "षडावश्यक" (सामायिक, चउवीसत्था, वंदना, पडिक्कमणा, काउसग्ग, और पच्चक्खान) रूप नित्य अवश्य करणीय

कुस टूट जावेंगे, और इस दशा में अनुयोगद्वारादि सूत्र की आज्ञा के उल्लंघन रूप महावज्रदंडप्रहार की मार निर्विचार स्वीकार करनी पड़ेगी ॥

इतना ही नहीं समझना कि चउवीसत्था ही उड़ जावेगा, साथ में पडिक्कमणा आवश्यक भी उड़ जावेगा, क्योंकि साधु साध्वी के पडिक्कमणे (पगाम सिज्जाय) मे—"नमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाइ महावीर पज्जवसाणाणं" ऐसा पाठ आता है. जिस का मतलब यह है कि ऋषभदेव आदि महावीर स्वामी पर्यंत चौवीस तीर्थंकरों प्रति नमस्कार होवे. यद्यपि ऐसे २ प्रत्यक्ष पाठ हैं, तथापि असत्य कल्पना करके भोले जीवों को अपने जाल में फंसाते है तो इससे अधिक अनर्थ का काम और क्या होसकता है ? इसवास्ते जो तीर्थंकरों के नामादि उच्चारण करके स्तुति करनी है सो नामनिक्षेप ही है, भावनिक्षेप नही, क्योंकि जो २ नाम लिये जाते हैं उस २ नाम के तीर्थंकर वर्त्तमान काल मे भावनिक्षेपे कहीं भी विद्यमान् नहीं हैं. जब भावनिक्षेपे नही हैं तो अनन्य गति होने से भावातिरिक्त निक्षेप उनको अवश्य मानना ही पड़ेगा, कभी भी छुटकारा नहीं होवेगा, और यदि यह वात दिनरात दिल को लात मारती होवे अर्थात् दिल मे यह ख्याल होवे कि भूतकाल में जो चौवीस तीर्थंकर थे, उनको वंदना करते हैं तो अतीतकाल में जो वस्तु होगई सो द्रव्यनिक्षेप है ॥

भूतस्य भाविनो वा, भावस्य हि कारणं तु यल्लोके ।
तद् द्रव्यं तत्वज्ञैः, सचेतनाचेतनं कथितमितिवचनात ।

और द्रव्यनिक्षेपको वंदनीय मानते नही हैं तो फिर बताओ ढुंढियों की वंदना किसको होती है ? इसवास्ते यदि हठ को छोड़

कर द्रव्यनिक्षेप को हाथ जोड़ लेवें और कदाग्रह से मुख को मोड़ लेवें तो इनका निस्तारा होसकता है अन्यथा नहीं॥ और यदि ऐसा उनके दिल में जमा हुआ है कि अतीत काल में जैसे अरिहंत थे वैसे अपने दिलमें कल्पना करके उनको हम वंदना करते हैं तो वह जाने,मरज़ी में आवे सो कर लेवें, परंतु यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचारा जावे तो इस में तो स्थापना नियम करके सिद्ध होगई,फिर जो कहते हैं कि स्थापना कुछ नहीं है,वंदना के योग्य नहीं है,सो कैसे सिद्ध होवेगा ? और स्थापना के माने विना तो जैनशास्त्रानुसार कोई भी करणी सिद्ध नहीं होवेगी, जिसमें भी खास करके दिन और रात्रि के तथा पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण तो कदापि ठीक २ सिद्ध नहीं होवेंगे, क्योंकि पडिक्कमण में तीसरा वंदनाआवश्यक होता है, जिसमें गुरु महाराज को वंदना करना होता है, सो गुरु महाराज की अनुपस्थिति में वंदना किस प्रकार पूरी होवेगी ? जैसे कि इस वक्त पार्वती की दूसरीवार की गुरुणी "मेलोजी" मौजूद है [पहिली गुरुणी तो "हीरां" थी] सो प्रायः करके तो पार्वती उसके साथ रहती ही कम है, तथापि जब कभी पार्वती उसके साथ होती होवेगी, तब तो अवश्य ही उसको वंदना करती होवेगी, परंतु उस समय मेलोजी, तथा मेलोजी के अभाव में पार्वती किसको वंदना करती होगी ? इस बात का विचार ज़रा पक्षपात के परदे को उठा कर ज़रूर करना योग्य है, तथा जैसे श्रीपूज्य अमरसिंघजी की संप्रदायमें इस समय सर्वोपरि पूज्य सोहनलालजी हैं, वह प्रतिक्रमण में वंदना आवश्यक के समय किसको वंदना करते हैं ? और किस रीति तीसरा वंदना आवश्यक का आराधन किया जाता है ?

क्योंकि इनके गुरुजी तो काल कर गये हैं, और इनसे वड़ा इस वक्त अन्य कोई इस संप्रदाय में है नही, आपही पूज्यजी महाराज होने से वड़े हैं—सुनने में आया है कि जब पूज्यजी महाराज और लालचंदजी की भेट हुई, तब पूज्यजी ने लालचंदजी को वंदना की थी, यदि यह वात वास्तव में सत्य है तो जैनशास्त्र, तथा लौकिक प्रथा के विरुद्ध है, अच्छा, हमें क्या, हमारा तो असली प्र॰ वंदना का है. चाहे सोहनलालजी वड़े वने रहें, और चाहे लालचंदजी वने रहें, वंदना तो दोनों को अवश्यमेव गुरु को करनी ही पड़ेगी, और दोनों के गुरु या गुरु स्थानीय कोई वड़े नहीं हैं तो अव वताना चाहिये यह किसको वंदना करते हैं ? और विना वंदना के तीसरा आवश्यक कैसे सधेगा ? और तीसरे आवश्यक के साधे विना षडावश्यक के संपूर्ण न होने से पूर्वोक्त पांच प्रतिक्रमण (दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक चातुर्मासिक और सांवत्सरिक) कैसे सिद्ध होवेंगे ? यदि कहो कि जो गुरु प्रथम थे उनको वंदना करते हैं तो वह इस वक्त साधु के या गुरु के भावनिक्षेप में हैं नही, क्योंकि वह तो मर के परमात्मा जाने किस गति में कैसी दशा में होवेंगे, तो भी उनके विचार के अनुसार देवलोक में देवता हुए होवेंगे, और वहां श्रीजिनप्रतिमा की सेवा पूजा भक्ति में तत्पर होवेंगे क्योंकि पूजा का करना देवता का अवश्य कृत्य ढुंढकमतानुयायी पुकारते हैं, तो फिर जिनप्रतिमा के महा दुश्मन होकर जिनप्रतिमा के पूजनेवाले देवतों को नमस्कार करते हैं यह कहते हुए ढुंढकमतानुयायी की ज़वान किस तरह चलेगी ? और देवता असंयति हैं, उनको संयति होकर वंदना करनी यह भी स्वीकार न होगा । तो फिर अव वताओ वंदना किसको होगी, ?

यदि उनकी पिछली अवस्था का विचार किया जावे तो वह द्रव्य-निक्षेप को वंदनीय नहीं मानते हैं तो फिर किस तरह वंदना करेंगे, और जो दिल में गुरु की उस अवस्था को थाप लेवेंगे तो स्थापना-निक्षेप सिद्ध होगया, बताओ? अब क्यां बनावेंगे?

तटस्थ—बस जी! क्या बनाना है! सीधे रास्ते को छोड़ बांके रास्ते होकर भी स्थापना तो उनको अवश्य माननी ही पड़ती है परंतु यह तो ऐसा हुआ जैसे कि हाथ से नहीं खाना तिनके से खाना, तो भी क्या हुआ, झक मारके स्थापना तो माननी ही पड़ी॥

विवेचक—बेशक, उन्होंने दिल में स्थापना स्थापन करली, बाहिर स्थापना स्थापन करनी नहीं मानी परंतु यदि शास्त्रानुसार चलना मंजूर करेंगे तबतो अवश्य ही बाहिर स्थापना स्थापन करनी पड़ेगी और जो अपने स्वच्छंद मार्ग पर चलना होवे तो उनका इखत्यार है। हमारा तो जितना उपदेश है, शास्त्रानुसार चलने वाले भव्य जीवों के लिये है, न कि आपापंथी निगुरे लाल बुजक्कडों के लिये।

"स्थापना आवश्य स्थापन करनी योग्य है"

तटस्थ—क्या किसी जैनशास्त्र का ऐसा भी प्रमाण है कि जिस से स्थापना स्थापन करके ही प्रतिक्रमणादि क्रिया करनी सिद्ध होवे?

विवेचक—श्री समवायांग सूत्र के बारवे समवाय में वंदना के पचवीस आवश्यक लिखे हैं अर्थात् वंदना मे २५ बोल पूरे करने चाहिये, सो पाठ यह है:—

"दुवालसावत्ते किति कम्मे पण्णत्ते। तंजहा।

दुओणयं जहाजायं किति कम्मं बारसावयं ।
चउसिरं तिगुत्तं दुप्पवेसं एग निक्खमणं " ॥१॥

भावार्थ—द्वादशाववर्त्त वंदना भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी ने फरमाई है सो इस रीति से है—दो अवनत दो वक्त मस्तक झुकाना (२) एक यथाजात अर्थात् जन्म और दीक्षा ग्रहण करने समय जो मुद्रा (शकल) होती है वैसी मुद्राका बनाना (३) बारह आवर्त्त अर्थात् प्रथम के प्रवेशमें छै,और दूसरे प्रवेशमें छै, इस तरह "अहो कायं काय संफासं" इत्यादि पाठ सहित प्रदक्षिणा रूप कायव्यापार हाथों से करना (१५) चार सिर अर्थात् प्रथम प्रवेश में दो सिर और दूसरे प्रवेश मे दो सिर कुल मिलके चार हुए (१९) तीन मन वचन और काया का गोपना अर्थात् मन वचन और काया से वंदनातिरिक्त और कोई व्यापार नही करना (२२) दो बार अवग्रह (गुरु महाराज की हद) में प्रवेश करना (२४) और एक बार बाहिर निकलना (२५) यह कुल पच्चीस हैं=अब सोचना चाहिये कि गुरु महाराज का जो अवग्रह कि जिसमें दो बार प्रवेश करना और एक बार उससे बाहिर निकलना, बिना साक्षात् गुरु महाराज के विद्यमान हुए, या बिना गुरु महाराज की स्थापना के हो सकता है ? कदापि नही । और जो वंदना का पाठ है उस में भी साफ गुरु महाराज से आज्ञा मांगकर अंदर प्रवेश करना जतलाया है, पक्षपात की ओट में आकर अर्थ की तर्फ ख्याल न किया जावे तो इन में किसी का क्या दोष है, यह तो केवल परमार्थ को न विचारने वाले का दोष है देखो, वंदना का पाठ यह है ॥

" इच्छामि खमासमणो वंदिउं जाव णिज्जाए

निसीहि आए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि अहो कायं काय संफासं खमणिज्जो भे किलामो इत्यादि ”

भावार्थ—मैं इच्छा करता हूं. हे क्षमाश्रमण ! वंदना करने को यथाशक्ति और काम का निषेध करके, आज्ञा दीजये मुझे मर्यादा सहित अवग्रह में आनेकी,, इस ठिकाने गुरुकी आज्ञा पाकर अवग्रह में निसीहि पढ़ता हुआ प्रवेश करे, पीछे आवर्त्त हस्त को प्रदक्षिणा रूप फिराता हुआ “ अहो कायं काय ” इत्यादि पढ़े। जिसका मतलब यह होता है कि—हे सद्गुरो ! आप की—अधः काया-चरण को-मैं अपनी-उत्तम काया-मस्तक-के साथ स्पर्श करता हूं कृपा करके जो कुछ आपको इस में किलामणा (तकलीफ) होवे सो क्षमा करें इत्यादि ॥

तथा पूर्वधारी श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण शब्दांभोनिधि-गंधहस्तिमहाभाष्य अपरनाम विशेषावश्यक में गुरुके अभावमें स्थापना स्थापनकरने का प्रगट प्रतिपादन करते हैं तथाहि:—

“ गुरुविरहम्मिय ठवणा गुरुवएसोवदंसणत्थं च ।
जिणविरहम्मि अ जिणबिंब सेवणामंतणं सहलं ॥१॥

पूर्वोक्त वर्णन से स्थापना आवश्यमेव रखनी सिद्ध है, और फलदायक भी है, तो भी कदाग्रही लोगों की निद्रा न खुले तो क्या किया जावे ? सूर्य के प्रगट होने पर उल्लू को नहीं दीखता है, उल्लू की आंखें बंद होजाती हैं तो सूर्य क्या बनावे ? उल्लूके ही कर्म का दोष है ॥

और देखो, पार्वतीने ही श्रीअनुयोगद्वार सूत्र का पाठ लिख कर स्थापना को साबित किया है यथा—

"से किं तं ठवणा वस्सयं २ जण्णं कट्ठकम्मेवा (१) चित्तकम्मे वा (२) पोत्थकम्मे वा (३) लिप्पकम्मे वा (४) गंठिमे वा (५) वेढिमे वा (६) पूरिमे वा (७) संघाइमे वा (८) अक्खे वा (९) वराडए वा (१०) एगो वा अणेगो वा सब्भाव ठवणा वा असब्भाव ठवणा वा आवस्स एत्ति ठवणा किज्जइ सेतं ठवणा वस्सयं॥ २ ॥ अरयार्थः ।

प्रश्न–स्थापना आवश्यक क्या । उत्तर–काष्ठपै लिखा (१) चित्रों में लिखा (२) पोथीपै लिखा (३) अंगुली से लिखा (४) गूंथ लिया (५) लपेट लिया (६) पूर लिया (७) ढेरी करली (८) कार खैच ली (९) कौड़ी रखली (१०) आवश्यक करनेवाले का रूप अर्थात् हाथ जोड़े हुए ध्यान लगाया हुआ ऐसा रूप उक्त भांति लिखा है अथवा अन्यथा प्रकार स्थापन कर लिया कि यह मेरा आवश्यक है सो स्थापना आवश्यक–इत्यादि" लो इस वात का न्याय थोड़े समय के लिये हम उनको ही समर्पित करते हैं कि– जैसे आवश्यक करनेवाले का रूप हाथ जोड़े हुए ध्यान लगाया हुआ सद्भाव स्थापना कहाती है, ऐसेही पद्मासनस्थ ध्यानारूढ मौनकृति जिनमुद्रा सूचक प्रतिमा, स्थापनाजिन कही जावे या नहीं ? यदि प्रतिमा स्थापनाजिन नहीं तो पूर्वोक्त स्वरूप स्थापना आवश्यक भी नही और यदि पूर्वोक्त स्वरूप सद्भाव स्थापना आवश्यक है तो जिनस्वरूप प्रतिमा भी स्थापनाजिन है, इसमें कोई संदेह नहीं है. इसीवास्ते पूर्वर्षि महात्माओं ने फरमाया है कि :–

नामजिणाजिणनामा, ठवणजिणा पुण जिणंदपडिमाओ

दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था ॥१॥

भावार्थ—श्रीजिनेश्वरदेव का नाम सो नामजिन, श्रीजिनेश्वर-देव की प्रतिमा सो स्थापनाजिन, श्रीजिनेश्वरदेव का जीव सो द्रव्यजिन और समवसरण में स्थित सो भावजिन. जिसका नाम उसी की स्थापना उसी का द्रव्य और उसी का भाव इस तरह चारों निक्षेप का भली प्रकार समवतार होजाता है, मतलब कि अज्ञान के उदय से द्वेष बुद्धि से भावनिक्षेप के विना अन्य निक्षेप को वंदनीय नहीं मानना यह केवल उनका कदाग्रह ही है. पूर्वोक्त लेख से यह तो साबित होगया है कि नाम, स्थापना और द्रव्य निक्षेप भी अवश्य ही मानना ही पड़ता है, विना माने किसी तरह भी गुज़ारा नहीं होसकता है, तो भी यदि जमालि की तरह हठ न छोड़ें तो उनकी मरज़ी, परंतु एक मोटी सी बात का ही जवाब देदें, हम देखें तो सही कि बोलना ही जानते हैं कि करने में भी होश्यार हैं। यदि अन्यमती मिथ्यात्वी देव की मूर्त्ति होवे तो उसको सम्यग्दृष्टि जीव नमस्कार करे या नहीं ? उसको नमस्कार करने से सम्यक्त्व मे कुछ फरक आता है या नहीं ? उसमें चारों ही निक्षेप माने जावेंगे या नहीं ? इस बात का विचार करके स्वयं ही समझ लेना चाहिये कि जैसे अन्य देव का नाम सम्यग्दृष्टि जीव स्मरण नहीं करता है, और स्वदेव का अर्थात् श्रीजिनेश्वरदेव का नाम स्मरण करता है, तो उसमें जरूर ही भेद समझा जाता है. जिसमें नफा जानता है करता है, नुकसान जानता है नहीं करता है. तो बस जब अन्यदेव की स्थापना को नमस्कार करने से नुकसान है तो स्वदेव की स्थापना को नमस्कार करने से अवश्यमेव फायदा है,

सिद्ध होना है जीव को जैसा लिखना या बोलना आता है यदि वैसाही विचारना आवे तभी इसकी बलिहारी है । अन्य मूर्त्तियो में निक्षेप का स्थापन और जिनमूर्त्ति में उसका उत्थापन यह कैसा न्याय है ? यदि मूर्त्ति में असलियत की तर्फ ख्याल कराने की बिलकुल ही ताकत नही है तो पार्वती की और सोहनलाल जी आदि मुखबंधों की मूर्त्तियां देखकर ढुंढक श्रावक श्राविकायो के दिल मे झटपट यह पार्वती जी सती जी है, यह पूज्य जी महाराज जी है, इत्यादि भावना क्यो आजाती है ? यह अमुक........है, या यह अमुक........है ऐसी भावना क्यों नही आती है ? इसको ज़रा दीर्घ दार्शित्व गुण का अवलंबन लेकर विचारना चाहिये, नकि-" हिरदे खिड़की जड़ी कुबुध की मुखबाधे क्या होय " ? इस मूजिब चुपचाप होना चाहिये । तात्पर्य-सब ठिकाने भावना ही का मूल्य पड़ता है, आगे वह भावना चाहे निमित्त को पाकर अच्छी होवे चाहे बुरी, फल तदनुसार ही होवेगा, श्रीप्रसन्नचन्द्र राजर्षि के चरित्र की तर्फ ख्याल करना चाहिये । तथा कालिक सौरिक जिसने भैसों का आकार बनाकर मारने का पाप पैदा किया, उसकी प्रवृत्ति का विचार करना चाहिये ! मतलब-कि पाप में उपयोग होने से पाप होता है और धर्म में उपयोग होने से धर्म होता है. परिणामे पाप, और परिणामे धर्म, ऐसी सूक्ष्मता के जानने वाले की बलिहारी है । श्रीआचारांग सूत्र में फरमाया है कि "जे आसवा ते परिसवा जे परिसवा ते आसवा " अर्थात् परिणाम के वश से जो आस्रव पाप का कारण है, सो संवर और निर्जरा का कारण होजाता है, ; और जो संवर निर्जरा का कारण होता है, सो परिणाम के वश से आस्रव पाप का

कारण होजाता है-जैसे भरत चक्रवर्त्ती का आरिसे भवन में अपने रूपादि को देखने के लिये जाना आस्रव का कारण था, परंतु मुद्रिका के गिरने से अनित्य भावना में तल्लीन होकर झट केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ॥ तथा एलापुत्र किस इरादा से घर से निकला था? और किस पदवी को प्राप्त हुआ? इत्यादि अनेक दृष्टांत इसकी बावत प्रसिद्ध हैं और साधु मुनिराज संवर निर्जरा का कारण है, उनको तकलीफ देने से या उन पर खोटे अध्यवसाय के आने से उस जीव के परिणाम के वश से आस्रव पापकर्म बांधने में वह निमित्त मिल गया, जैसे भगवान् श्रीमहावीर स्वामी को तकलीफ देनेवाला ग्वालिया अपने ही परिणाम के वश से सातवें नरक में गया. इत्यादि बहुत दृष्टांत प्रसिद्ध हैं, परंतु न्यूनता इसी बात की है कि कथा सुनकर तहत वाणी सत्य वचन कहकर रस्ता पकड़ते हैं, उसके असली परमार्थ की तर्फ ख्याल कोई विरला ही करता है, विचारो-कि किसी प्रकार साक्षात् वस्तु से उसकी स्थापना (नकल) मे नुकसान जानकर ही शास्त्रकारने उससे बचना जरूरी फरमाया है, जिसका पाठ और असली मतलब विचारने योग्य है. और वह पाठ श्रीदशवैकालिकादि सूत्रों में प्रसिद्ध है, तथा प्रायः सर्व जैनी लोग जानते हैं और बराबर मंजूर करते हैं कि "जिस मकान में स्त्री की मूर्ति होवे उस मकान में साधु-बिलकुल न रहे" इस बात को विचारना योग्य है कि साधु गृहस्थों के घरों में भिक्षा लेने के वास्ते जाते हैं, जहां महादेवी स्त्री मोहिनी रूप धारण किये साक्षात् मौजूद होती है वहां स्त्रियों के हाथ से भोजन पानी लेते हैं, स्वामी जी के दर्शन करने को छनन २ करती स्वामी जी के मकान में आती हैं, व्याख्यान

में घंटों तक वैठी रहती है, काम पड़े स्वामी जी धार्मिक वार्त्तालाप भी करते है, इत्यादि वातो में इतना बुरा नहीं समझा जाता है, और जिस मकान मे स्त्री की मूर्ति हो उस मकान में रहना साधु के लिये बुरा समझा जाता है सो क्या वात है ? यदि कोई उस चित्रलिखित स्त्री से किसी प्रकार की अपनी इच्छा पूरी करनी चाहे, तो कदाचिदपि नहीं हो सकती है, खाना पीना उससे नही मिल सकता, वोलना चालना उससे नही हो सकता है, दिल की खुशी उससे हासल नहीं हो सकती है, कोई वह चित्र लिखित स्त्री साधु के गले चिपट नहीं जाती है, फिर क्या हेतु है जो शास्त्रकार निषेध करते है ? केवल चित्त की एकाग्रता के लगने से मन मे बुरा ख्याल पैदा होने के भय के और कोई भी मतलब सिद्ध नही होवेगा, क्योंकि यद्यपि साक्षात् स्त्री का सन्मुख होना पूर्वोक्त कार्यों मे होता है, परंतु वहां चित्त की एकाग्रता करने का अवसर साधु को मुश्किल से मिल सकता है, और मकान में जो तसवीर होवेगी उसको वारवार देखने मे चित्त एकाग्र तल्लीन होजावेगा, जिससे मन में विगाड़ होने का पूरा पूरा भय है, इसीलिये साधु के वास्ते शास्त्रकारों ने निषेध किया है. "विना प्रयोजनं मंदोपि न प्रवर्त्तते" विना किसी मतलब के मूर्ख भी कोई काम नही करता है तो क्या शास्त्रकारो की आज्ञा विना मतलब कभी हो सकती है ? नही, कदापि नही, वस इसीतरह श्रीजिनेश्वरदेव की प्रतिमा मूर्त्ति (तसवीर) भी मन की एकाग्रता करने के वास्ते एक वड़ा भारी अवलंवन है, और इसीलिये किसी प्रकार श्रीजिनप्रतिमा का दर्जा साक्षात् श्रीतीर्थंकर भगवान् से वढकर शास्त्रों में फरमाया मालूम देता है। जैसाकि साक्षात् श्रीतीर्थंकर भगवान् की वंदना करने के समय "देवयं चेइयं" पाठ आता है. जिसका तात्पर्य यह

है कि जैसे श्रीजिनप्रतिमा की सेवा भक्ति करता हूं, उसी रीति अंतरंग प्रीति से आपकी सेवा करता हूं. तथा साक्षात् तीर्थंकर भगवान् को नमस्कार करने के समय " सिद्धि गइ नाम धेयं ठाणं संपाविउं कामस्स " अर्थात्–सिद्धिगति नामा स्थान को प्राप्त होने की चाहना वाले–ऐसा पाठ पढ़ा जाता है. और श्रीजिनप्रतिमा के आगे " सिद्धिगइ नाम धेयं ठाणं संपत्ताणं " अर्थात्–सिद्धिगति नामा स्थान को प्राप्त होचुके हैं, ऐसा पाठ पढ़ा जाता है, और यह बात श्रीरायपसेणी सूत्रादि जैनसूत्रों में प्रायः प्रतिस्थान आती है, तो भी उनकी बुद्धि इसके मानने मे शरमाती है तो फिर इसमें कोई क्या करे ? तथापि इतना तो जरूर ही कहते हैं कि निक्षेपों की बाबत सत्यार्थचन्द्रोदय नामा थोथी पोथी में जितने मनःकल्पित कुतर्क किये हैं, वह सर्व इन पूर्वोक्त बातो से निरर्थक होगये हैं और इसीवास्ते हमने भी निक्षेपों के विषय में इतना विस्तार सहित लिखा है, क्योंकि पार्वती का असली अभिप्राय स्थापना को उड़ा कर श्रीजिनप्रतिमा के निषेध करने के सिवाय और कुछ भी नहीं है. इसलिये पार्वती के किये श्रीजिनप्रतिमा के निषेध को स्थापनासिद्ध द्वारा हमने खंडन कर दिया है, और इसके खंडन से पार्वती का सारा ही परिश्रम निष्फल होचुका। इसवास्ते अब अधिक लिखने की कोई जरूरत नहीं है, तो भी कितनीक जरूरी बातें कि जिनमें पार्वती की बिलकुल बेसमझी पाई जाती है उनका कुछ विवेचन करते हैं. बाकी " मूलं नास्ति कुतः शाखा " मूल नहीं है तो शाखा कहां से होवे इसके अनुसार जो जो लेख जैनशास्त्रों के या और किसी के आधार विना अंधपंगून्यायवत् कुछ का कुछ घसीट मारा है उन

की बावत हम अपने अमूल्य समय को वृथा व्यय करना ठीक नहीं समझते हैं जैसे कि वीस पृष्ठ पर्यंत निक्षेपसंबंधी जो जो कल्पना की हैं, शास्त्रानुसार बिलकुल ही नहीं हैं ? यदि जैनशैली के अनुसार है तो जैसे हमने पूर्वर्षि प्रणीत संस्कृत प्राकृत पाठ दिखाये हैं, पार्वती को भी तद्वत् अपने किये अर्थ की सत्यता के लिये पूर्वर्षि महात्माओं के किये अर्थ संस्कृत प्राकृत में दिखाने चाहियें, अन्यथा पार्वती के मनोघटित अर्थ का मर्दन तो कर ही दिया है ॥

तटस्थ—पृष्ठ २१ पर पार्वती ने लिखा है कि "आत्माराम तो विचारा संस्कृत पढ़ा हुआ था ही नही, क्योंकि संवत् १९३७ में हमारा चतुर्मास लाहौरमें था वहां ठाकुरदास भावड़ा गुजरांवालनगर वाले ने आत्माराम और दयानन्द सरस्वती के पत्रिका द्वारा प्रश्नोत्तर होते थे उनमें से कई पत्रिका हमको भी दिखाई थीं देखो आत्माराम जी कैसे प्रश्नोत्तर करते है तो उन में एक चिट्ठी दयानन्द वाली में लिखा हुआ था कि आत्माराम जी को भाषा भी लिखनी नहीं आती है जो मूर्ख को मूर्ष लिखता है" इत्यादि

अरी क्या तुझ पंडितानी को ऐसी बात लिखती हुई शरम भी नहीं आती है ? जो एक तुच्छ होकर ऐसे बड़े महात्मा के विषय में कल्पित शब्द वर्णन करती है, और अपने आपको "हमारा-हमको" इत्यादि वड़ाई के शब्दों में लिखती है, ला दिखला, मूर्खको मूर्ष कहां लिखा है ? या यूंही गप्पाष्टक ही चलाना जानती है ? ले देख, तुंही पंडितानी बनकर अपनी ज्ञानदीपिका के पृष्ठ ३१ पंक्ति १३ तथा १६ पर "अभिलाषी" को "अभिलाखी" लिखती है, क्यों ? संतोष हुआ कि नहीं ? ले और भी अपनी अशुद्धि देख, पृष्ठ ९१ पंक्ति १६ पर "परिग्रह" को "प्रग्रह" लिखती है, बस एताव-न्मात्रेस ही विद्वान् पुरुषों की सभा में तेरी अयोग्यता विदित होगई है ॥

पार्वती-अजी वाह! "परोपदेशे कुशला दृश्यंते बहवो नराः" इस प्रकार आप मुझे तो कहते हैं कुत्सित शब्दों में लिखती है परन्तु फरमाइये अब आप क्या करते हैं?

विवेचक-अरे भोली! जानती है! फिर भी पूछती है! हम पुरुष हैं और तूं स्त्री है, पुरुष को धर्मप्रधान कहा है, परन्तु स्त्री को नहीं, ले तूंही बता? यदि कोई पुरुष आजकल मुंह को पाटी बांध कर तेरे पंथ में आमिले, तो उसको तूं वंदना करेगी या वह पुरुष तुझ को वंदना करेगा? बलात्कार से तुझको ही वंदना करनी पड़ेगी॥ बस साबित होगया पुरुष धर्मप्रधान है, इसलिये हम तुझे एक वचन लिखने का अधिकार बराबर रखते हैं, यद्यपि तुच्छ शब्दों में लिखना हम उचित नहीं समझते हैं और इसीवास्ते तेरे नाम को बढ़ाकर लिखते रहे हैं तथापि यहां प्रसंगवश से तुझ को हितशिक्षा के निमित्त ऐसे लिखना पड़ा है, परन्तु तूं हमको या किसी और महात्मा को एक वचन में लिखने का अधिकार कदापि नहीं रखती है, परंतु यह तेरे वश नहीं है, पात्र का ही प्रभाव है, नीतिशास्त्र का वचन है:-

यतः-पीत्वा कर्दमपानीयं, भेको बटबटायते।
दिव्यमाम्ररसं पीत्वा, गर्वं नायाति कोकिलः॥ १
तथा-अंगुष्ठोदकमात्रेण, शफरी फरफरायते।
अगाधजलसंचारी, गर्वं नायाति रोहितः॥ १

अच्छा, तू जान, तेरी मरजी में आवे सो कर, हमको क्या तेरा किया तूंने ही भोगना है। "पपा पाप न कीजिये, न्यारे रहिये आप। जो करसी सो भोगसी, क्या बेटा क्या बाप॥" तो भी जैसे महात्मा आत्मारामजी प्रायः जगज़ाहिर होगये हैं, तेरी शक्ति नहीं,

उनकी पंडिताई की धूम विलायतों तक होचुकीहै—ए०एफ०रुडाल्फ हार्नेल साहिब उपासकदशा के उपोद्घात में लिखते हैं कि :—

In a thud Appendix (No III) I have put together some additional infoimation, that I have been able to gathei since publishing the seveial fasciculi Foi some of this infoimation, I am indebted to Muni Maharaj Atmaiam ji Anand Vijay ji, the well-known and highly iespected Sadhu of the Jain community thioughout India, and author of (among otheis) two very useful woiks in Hindi, the *Jaina Tattvadarsha* mentioned in note 276 and the *Ajnana Timira Bhaskara* I was placed in communication with him thiough the kindness of Mr Magganlal Dalpatiam My only iegiet is that I had not the advantage of his invaluable assistance from the very beginning of my woik.

कई प्रकार की सूचनायें जो मै चंद हिस्सों के छपने के समय से जमा कर सका हूं, तीसरी अपिंडिक्स (परिशिष्ट) में मैने दर्ज की है, इनमें से कितनीक सूचनाओं के लिये मैं मुनि महाराज आत्मारामजी आनंदविजयजी का आभारी हूं, जो हिंदुस्थान भर में जैनसमुदाय के विख्यात और परम पूजनीय साधु है और अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त हिंदुस्तानी भाषा की दो बहुत उपयोगी पुस्तकों जैनतत्त्वादर्श जिसका नोट २७६ मे ज़िकर है और अज्ञानतिमिर भास्कर—के कर्त्ता हैं,मेरा इनका पत्र व्यवहार मि०मगनलाल दलपतराम की कृपा से हुआ था, मुझे अफसोस केवल इतना ही है कि मै उनकी अमूल्य सहायता का लाभ अपनी रचना के प्रारंभ मे ही नहीं उठा सका।

तथा पूर्वोक्त साहिब बहादुर ने संस्कृत में भी तारीफ लिखी है—तथाहि—

दुराग्रहध्वांतविभेदभानो, हितोपदेशामृतसिंधुचित्त ।
संदेहसंदोहनिरासकारिन्,जिनोक्तधर्मस्यधुरंधरोसि॥१
अज्ञानतिमिरभास्कर—मज्ञाननिवृत्तये सहृदयानाम् ।
आर्हततत्वादर्शं ग्रथमपरमपि भवानकृत ॥ २ ॥
आनंदाविजय श्रीमन्नात्माराम महामुने ।
मदीय निखिल प्रश्न व्याख्यातः शास्त्रपारग ॥ ३
कृतज्ञताचिन्हमिदं ग्रंथसंस्करणं कृतिन् ।
यत्नसंपादितं तुभ्यं श्रद्धयोत्सृज्यते मया ॥ ४ ॥

कलिकातायाम् २२ आप्रेल सन् १८९० ।

तरजुमा—(१) हे दुराग्रह रूप अंधेरे को दूर करने में सूरज समान ! हे हितोपदेश रूप अमृतके समुन्दर में चित्त स्थापन करने वाले ! हे सन्देह के समुहों को दूर करने वाले ! आप जिनोक्त अष्टादश दूषण रहित सर्वज्ञप्रणीत धर्म के धुरंधर हैं—

(२) आपने सज्जन पुरुषों के अज्ञान की निवृत्ति निमित्त अज्ञानतिमिरभास्कर और आर्हततत्वादर्श (जैनतत्वादर्श) ग्रन्थ बनाये हैं—

(३) हे आनन्दविजय ! हे श्रीमान् ! हे आत्माराम ! हे महामुने ! हे मेरे सम्पूर्ण प्रश्नोंके उत्तर देनेवाले ! हे शास्त्रों के पारगामी !

(४) हे पुण्यात्मन् ! आपने मेरे ऊपर जो उपकार किया है उसके बदले में कृतज्ञता के चिन्ह रूप यत्न से प्राप्त किये इस पुस्तक को श्रद्धापूर्वक मैं आपको अर्पण करता हूं–कलकत्ता २२ अप्रेल १८९०—

तथा–(दी वर्लडस पार्लिमेंट आफ रिलिजन्स) इस नाम के शहर लंडन मे छपे पुस्तक के २१ वें सफे पर श्रीमुनि आत्मारामजी महाराज का फोटो दिया है, और उसके नीचे ऐसे लिखा है :–

No man has so peculiarly indentified himself with the interests of the Jain community as Muni Atmaram ji He is one of the noble band sworn from the day of initiation to the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the high priest of the Jain community and is recognized as the highest living authority on Jain Religion and literature by Oriental Scholars

अर्थ–जैसी खूबी मे मुनि आत्मारामजी ने अपने आप को जैनधर्म के हित में अनुरक्त किया है ऐसे किसी ने नहीं किया, संयमग्रहण करने के दिन से जीवन पर्यंत जिन प्रशस्त महाशयों ने स्वीकृत श्रेष्ठ धर्म मे अहोरात्र सहोद्योग रहने का नियम किया है उनमें से आप एक है, जैनसमाज के आप परमाचार्य है, और प्राच्य विद्वानों ने इनको जैनधर्म तथा जैन साहित्य मे सर्वोत्तम ज़िन्दा प्रमाण माना है ।

तथा–रायल. एशियाटिक सुसाईटी के चुनंदा अंग्रेज विद्वान् ऐ० एफ० रुडाल्फ हार्नल साहिब महात्मा श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराजजी की बाबत लिखते है–

CALCUTTA, 14th September 1888

MY DEAR SIR,

I am very much obliged to you for your kind letter of the 4th instant, also to Muni Atmaramji for his very full replies. Please convey to the latter the expression of my thanks for the great trouble he has taken to reply so promptly and so fully to my questions. His answers are very satisfactory; and I shall refer to them in my forthcoming——————, and express publicly my obligations to the Muni for his kindness.

भावार्थ–मैं आपके चार तारीख़ के कृपापत्र का तथा मुनि आत्मारामजी के संपूर्ण उत्तरों का बहुत अहसानमंद हूं, मुनि जी ने मेरे प्रश्नो के उत्तर इतनी जल्दी और विस्तार पूर्वक देने मे जो परिश्रम उठाया है उसका धन्यवाद कृपया उनसे निवेदन करें, उनके उत्तर अतीव संतोषकारक है, और मुनि जी की बाबत मैं अग्रिम........मे निवेदन करूंगा और उनकी कृपा का धन्यवाद सर्व साधारण में प्रगट करूंगा।

इत्यादि अंग्रेज विद्वानों का जिनकी बाबत ऐसा उत्तम अभिप्राय है, जिनके किये जैनतत्त्वादर्शादि ग्रंथ उनकी विद्वत्ता ज़ाहिर कर रहे हैं, जिनके बनाये ग्रंथों की बाबत बडे बडे पंडित लोक अपना उच्चमत ज़ाहिर करते हैं, तो क्या तेरे लिखने से उनकी पांडित्यता मे कुछ न्यूनता हो सकती है? कदापि नहीं। ले देख, महात्मा योगजीवानंद स्वामी अपने हस्त लिखित पत्रमे ऐसे लिखते हैं–

स्वस्ति श्रीमज्जैनेंद्रचरणकमलमधुपायितमनस्क श्री ल श्रीयुक्त परिव्राजकाचार्य परम धर्मप्रतिपालक श्रीआत्माराम जी तपगच्छीय श्रीमन्मुनिराज बुद्धिविजयशिष्य श्रीमुखजी को परिव्राजक

योगजीवानंदस्वामी परमहंसका प्रदाक्षिण त्रय पूर्वक क्षमा प्रार्थनमेतत् ।

भगवन् व्याकरणादि नाना शास्त्रों के अध्ययनाध्यापन द्वारा वेदमत गले में बाध मै अनेक राजा प्रजा के सभा विजय करे देखा व्यर्थ मगज मारना है । इतना ही फल साधनांश होता है कि राजे लोग जानते समझते है फलाना पुरुष बड़ा भारी विद्वान् है परंतु आत्मा को क्या लाभ होसकता देखा तो कुछ भी नही। आज प्रसंगवस रेलगाडी से उतर के बठिंडा राधाकृष्णमंदिर में बहुत दूर से आनके डेरा किया था सो एक जैन शिष्य के हाथ दो पुस्तक देखे तो जो लोग (दो चार अच्छे विद्वान् जो मुझ से मिलने आये) थे कहने लगे कि ये नास्तिक (जैन) ग्रंथ हैं इसे नही देखना चाहिये अंत उनका मूर्खपणा उनके गले उतार के निरपेक्ष-बुद्धि के द्वारा विचार पूर्वक जो देखा तो वो लेख इतना सत्य व निष्पक्षपाती दीख पड़ा कि मानो, एक जगत् छोड के दूसरे जगत् में आन खडा हो गया ॥

ओ आबाल्यकाल आज७०वर्ष से जो कुछ अध्ययन काल व वैदिकधर्म बांधे फिरा सो व्यर्थसा मालूम होने लगा जैनतत्त्वादर्श व अज्ञानतिमिरभास्कर इन दोनों ग्रंथों को तमाम रात्रि दिव मनन करता बैठा व ग्रंथकार की प्रशसा बखानता बटिंडे में बैठा हूं इत्यादि" । जिन महात्मा की बाबत बड़े बड़े विद्वानो का ऐसा ख्याल है उनकी बाबत तेरा कहना तो ऐसा है जैसा कि चांद के ऊपर थूकना है!सत्य है

विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् ।
न हि वंध्या विजानाति गुर्वी प्रसववेदनाम् ॥१॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुष के परिश्रम को विद्वान् ही जानता है मूर्ख नहीं, जैसेकि पुत्रजन्म का दुःख बांझ नही जानती है ।

अफसोस है। तेरी समझ पर जोकि बलाबलका विचार करे विना अपनी ही हांसी कराने के वास्ते अनुचित बात लिख मारी है। जब साधारण प्रसिद्ध बातके विषय में इतना बडा भारी झूठा गोला गढ़ती है तो और शास्त्रों के अर्थों की निसबत व्यर्थ बकवास करे तो इस में क्या आश्चर्य है ? तू ने तो पंजाब की "जातकी कोड़ किरली शहतीर को जप्फी" इस कहावत वाली बात कर दिखाई मालूम देती है॥

स्वामी श्रीदयानंदसरस्वतीजीने अपनें बनाये सत्यार्थ प्रकाश में चार्वाक मत के श्लोक लिखकर जैनमत के नाम से प्रसिद्ध करके जैनमत को धब्बा लगाने की जो चेष्टा की थी उसको दूर करने का उद्यम महात्मा श्रीमान् आत्माराम जी महाराज ने किया था और द्वितीय वारके छपे सत्यार्थप्रकाश में फिर वह प्रकरण बराबर बदला गया मालूम होता है, इस अपूर्व गुण को तो तैंने मंजूर न किया, उलटा॥

"त्यक्त्वा भक्ष्यभृतं भांडं विष्टां भुंक्ते यथा किरः"

जैसे सुअर खाने के लायक अच्छी अच्छी चीजों से भरे बरतन को छोड़ कर गंदगी को खाता है ऐसे अवगुण ही ग्रहण किया मालूम होता है, और जो स्वामी दयानंदसरस्वति जी के नाम की ओट तैंने ली है सो भी अपने आपको चोट से बचाने के लिये ली है, नहीं तो तेरे पास क्या प्रमाण है कि स्वामी दयानंद सरस्वती जी का लिखा जो तैंनें ज़ाहिर किया है वह ठीक २ है ! और स्वामी श्रीआत्मारामजी महाराज ने ऐसे ही लिखा था जैसा-तैंने स्वामीश्रीदयानंदसरस्वतीजी के नामकी आड लेकर राड़ मारी है॥

विवेचक—भला जी, स्वामीश्रीदयानंदसरस्वती जी ने ही जान बूझकर और का और शब्द लिख दिया होवे तो इसमें भी क्या आश्चर्य है ? जैसाकि सन् १८८४ के छपे सत्यार्थप्रकाश के ४४७ पृष्ठोपरि

"भुंक्ते न केवलं न स्त्री मोक्षमेति दिगंबरः ।
प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेतांबरैः सह ॥२॥"

इस श्लोक के भावार्थ में लिखा है कि "दिगंबरों का श्वेतांबरो के साथ इतना ही भेद है कि दिगंबर लोग स्त्री का संसर्ग नही करते और श्वेतांबर करते है इत्यादि वातों से मोक्ष को प्राप्त होते हैं यह इनके साधुओं का भेद है ।

अब सोचना चाहिये कि या तो स्वामी जी दयानंद जी साहिब ने इस वात का परमार्थ ही नही जाना होवेगा (वास्तविक में है तो ऐसे ही) अथवा जान बूझ के ही गोला गरड़ा दिया होवेगा । क्योंकि स्वामी जी के लेख से ही सिद्ध होता है कि जैनियो के खंडन के वास्ते खोटा पक्ष मंजूर करना बुरा नही है, देखो सन् १८८४ के छपे सत्यार्थप्रकाश के २८७ पृष्ठोपरि "अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्म की एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्य का निज मत था तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खंडन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है" क्या अब कोई कसर रही कि स्वामी जी ने जान बूझकर अदल वदल नही किया है ? वेशक वरावर किया है, और जैनियों की वावत स्वामी जी के दिल में कितना जहर भरा पड़ा था सो स्वामी जी के पूर्वोक्त लेख से ही ज़ाहिर होरहा है ॥

तथा अखबार जीवनतत्व (देवसमाज लाहौर) १० सितंबर सन् १९०५ में लिखा है कि :-

सवाल—बेशक मालूम होता है कि आर्यसमाज के स्वामी दयानंद स्वामी भी इसी किसम के मतप्रचारक थे ?

जवाब—इसमें क्या शक है—वेदों के ईश्वररचित बनाने के बारे में उनकी कुल मनघड़त गप्पें और उनके मंत्रो के अर्थों का उलट फेर साफ तौर से ज़ाहिर करता है कि स्वामी साहिब मोसूफ भी ऐसे ही " महर्षि " थे कि जिनके ख्याल में किसी मज़हब के फैलाने के लिये झूठ और रियाकारी का हस्बमौक़ा इस्तेमाल न सिर्फ दुरुस्त और मुनासिब है बल्कि बहुत काबले तारीफ भी है— मतलब देखिये यही दयानंद साहिब शंकराचार्य के वेदांत मत का खंडन और जैनियों के साथ उनके शास्त्रार्थ का बयान करके अपनी किताब सत्यार्थप्रकाश तबै दोयम के २८७ सफा पर क्या कुछ तहरीर फर्माते हैं :-

" अब इसमें विचारना चाहिये कि अगर जीव और ब्रह्म की एकता और जगत् का झूठ मूठ होना शंकराचार्य जी का सचमुच अपना अक़ीदा था तो वह अच्छा अक़ीदा नहीं है और अगर जैनियों के खंडन के लिये उन्होंने उस अक़ीदा को इख़तीयार किया है तो कुछ अच्छा है" ॥

अब देखिये यहां पर स्वामी दयानंद साहिब अपने आपको अपने असल रंग रूप में ज़ाहिर करते हैं यानी वह कहते हैं कि अगर शंकराचार्य जी का जो उनके कौल के बमूजिब वैदिक मज़हब के कायम करने वाले थे—जीव ब्रह्म की एकता और जगत का मिथ्या यानी झूठ मूट होना सिदक़ दिल से अपना यकीन या

अकीदा हो तब तो वह अच्छा नहीं लेकिन अगर उनोंने झूठ मूट और मकारी के साथ उसे इसलिये मान रक्खा था कि उसके जरिये जैनियों को,जो वेदों को नहीं मानते खंडन किया जाय "तो कुछ अच्छा है" यानि वेदो के नाम से अगर किसी मत के प्रचार करने में झूठ और मकारी से काम लिया जावे तो ऐसा करना बुरा नहीं है—

अब यह ज़ाहिर है कि ऐसा शखस जो वेदों के नाम से जरूरत समझने पर सब किसम की फरज़ी कहानियां और वेदमंत्रों के झूठ मायने तय्यार करेगा उसमे किसी को क्या शक होसक्ता है? यही बायस है कि उनके वेदभाष्य को आर्यसमाजियों के सिवाय कोई संस्कृत पंडित चाहे वह इस मुलक का हो और चाहे किसी और मुलक का ठीक नहीं मानता"

बस इसी प्रकार यदि स्वामी जी ने "मूर्ख" को बदल के "मूर्ष" घसीट डाला होवे तो इस बात का पार्वती के पास क्या प्रमाण है! जो वह अपने साथ स्वामी जी का भी नाम बदनाम करना चाहती है॥

और एक यह भी बात विचारने के योग्य है कि स्वामी दयानंदजी साहिब ने जैनियो के भेद की बाबत जो कुछ अर्थ किया है वह असत्य है, इतना ही नहीं, किंतु जो श्लोक लिखा है वह भी अशुद्ध है! क्योंकि शुद्ध श्लोक यह है :—

"भुंक्ते न केवली न स्त्री, मोक्षमेति दिगंबराः।
प्राहुरेषामयं भेदो, महान् श्वेतांबरैः सह"॥

स्वामी दयानंद साहिब ने "केवली" के स्थान में "केवलं"

लिख दिया है और " दिगंवराः " बहुवचन के स्थान में "दिगंवरः" एक वचन लिख दिया है, तो क्या पार्वती के निश्चय के अनुसार स्वामी दयानंदजी साहिब को लिंग का या वचन का ज्ञान नहीं था ? क्या वह संस्कृत या भाषा को नहीं जानते थे ? नहीं बराबर जानते थे. फिर क्या कारण हैं जो ऐसी भूल खाई ? इसवास्ते स्वामी दयानंद साहिब का नाम लेकर जो अपने आपको बचाना चाहा है सो पार्वती की बड़ी भारी भूल है, और यदि पार्वती का यह ख्याल है कि स्वामीदयानंद साहिब ने लिखा है इसवास्ते ठीक है विश्वास के योग्य है, तो प्रथम तो पार्वती के पास स्वामी जी का लेख प्रमाण के योग्य कोई नहीं है केवल ठाकुरदास भावड़ा गुजरांवाला निवासी के पास पत्र देखा था लिखकर किनारे होगई है, परंतु लो देखो, हम आपको स्वामी श्रीदयानंद सरस्वती जी के ही लेख दिखाते हैं यदि पार्वती को स्वामी जी के लिखने पर निश्चय है तो इन बातों को सत्य मानकर इन पर अमल कर लेवे। अन्यथा पार्वती के निश्चय में फरक पड़ जावेगा, और यदि स्वामी जी के लेख का पार्वती को निश्चय नहीं है तो फिर स्वामी दयानंद जी साहिब का नाम लेकर दूसरों की बाबत अबे तबे क्यों लिखती है ? देखो, स्वामी दयानंदजी सन् १८७५ के छपे सत्यार्थप्रकाश के ४०१ पृष्ठोपरि लिखते हैं कि-" जे ढुंढिये होते हैं उनके केश में जूआं पड़ जांय तोभी नहीं निकालते और हजामत नहीं बनवाते किंतु उनका साधु जब आता है तब जैनी लोग उसकी दाढ़ी मौंछ और सिर के बाल सब नोच लेते हैं जो उस वक्त वह शरीर कंपावे अथवा नेत्र से जल गिरावे तब सब कहते हैं कि यह साधु नहीं भया है" ॥

तथा सन् १८८४ के छपे सत्यार्थप्रकाश के ४४७, ४८, ४९ पृष्ठ में लिखते हैं :–

" श्वेतांबरों में से ढूंढिया और ढूंढियों में से तेरहपंथी आदि ढोंगी निकले हैं। ढूंढिये लोग पाषाणादि मूर्त्ति को नहीं मानते और वे भोजन स्नान को छोड़ सर्वदा मुख पर पट्टी बांधे रहते है और जति आदि भी जब पुस्तक बांचते है तभी मुख पर पट्टी बांधते हैं अन्य समय नहीं। (प्रश्न) मुख पर पट्टी अवश्य बांधना चाहिये क्योंकि " वायुकाय " अर्थात् जो वायु में सूक्ष्म शरीर वाले जीव रहते हैं वे मुख के वाफ की उष्णता से मरते है और उसका पाप मुख पर पट्टी न बांधने वाले पर होता है इसीलिये हम लोग मुख पर पट्टी बांधना अच्छा समझते हैं। (उत्तर) यह बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणादि की रीति से अयुक्त है क्योंकि जीव अजर अमर है फिर वे मुख की वाफ से कभी नहीं मर सक्ते इनको तुम भी अजर अमर मानते हो। (प्रश्न) जीव तो नही मरता परंतु जो मुख के उष्ण वायु से उनको पीड़ा पहुंचती है. उस पीड़ा पहुंचाने वाले को पाप होता है इसीलिये मुख पर पट्टी बांधना अच्छा है। (उत्तर) यह भी तुम्हारी बात सर्वथा असंभव है क्योंकि पीड़ा दिये विना किसी जीव का किंचित् भी निर्वाह नहीं होसकता जब मुख के वायु से तुम्हारे मत में जीवों को पीड़ा पहुंचती है तो चलने फिरने, बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादि के चलाने में भी पीड़ा अवश्य पहुंचती होगी इसलिये तुम भी जीवों को पीड़ा पहुंचाने से पृथक् नहीं रह सक्ते। (प्रश्न) हां जबतक बन सके वहां तक जीवों की रक्षा करनी चाहिये और जहां हम नहीं बचा सकते वहां अशक्त हैं क्योंकि सब वायु आदि पदार्थों मे जीव भरे हुए हैं जो हम मुख

पर कपड़ा न बांधे तो बहुत जीव मरें कपड़ा बांधने से न्यून मरते हैं। (उत्तर) यह भी तुम्हारा कथन युक्तिशून्य है क्योंकि कपड़ा बांधने से जीवों को अधिक दुःख पहुंचता है जब कोई मुख पर कपड़ा बांधे तो उसका मुख का वायु रुक के नीचे वा पार्श्व और मौनसमय में नासिका द्वारा इकट्ठा होकर वेग से निकलता है उससे उष्णता अधिक होकर जीवों को विशेष पीड़ा तुम्हारे मतानुसार पहुंचती होगी। देखो जैसे घर वा कोठरी के सब दरवाजे बंद किये वा पड़दे डाले जायें तो उष्णता विशेष होती है खुला रखने से उतनी नहीं होती वैसे मुख पर कपड़ा बांधने से उष्णता अधिक होती है और खुला रखने से न्यून वैसे तुम अपने मतानुसार जीवों को अधिक दुःखदायक हो और जब मुख बंद किया जाता है तब नासिका के छिद्रों से वायु रुक इकट्ठा होकर वेग से निकलता हुआ जीवों को अधिक धक्का और पीड़ा करता होगा। देखो! जैसे कोई मनुष्य अग्नि को मुख मे फूंकता और कोई नली से तो मुख का वायु फैलने से कम बल और नली का वायु इकट्ठा होने से अधिक बल अग्नि में लगता है वैसे ही मुख पर पट्टी बांधकर वायु को रोकने से नासिका द्वारा अति वेग से निकलकर जीवों को अधिक दुःख देता है इससे मुखपट्टी बांधने वालों से नहीं बांधने वाले धर्मात्मा हैं। और मुख पर पट्टी बांधने से अक्षरों का यथा- योग्य स्थान प्रयत्न के साथ उच्चारण भी नहीं होता निरनुनासिक अक्षरों को सानुनासिक बोलने से तुमको दोष लगता है तथा मुख पट्टी बांधने से दुर्गंध भी अधिक बढ़ता है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गंध भरा है। शरीर से जितना वायु निकलता है वह दुर्गंधयुक्त प्रत्यक्ष है जो वह रोका जाय तो दुर्गंध भी अधिक बढ़ जाय जैसा

कि बंध "जाजरू" अधिक दुर्गंधयुक्त और खुला हुआ न्यून दुर्गंधयुक्त होता है वैसे ही मुखपट्टी बांधने, दंतधावन, मुखप्रक्षा-लन, और स्नान न करने तथा वस्त्र न धोने से तुम्हारे शरीरों से अधिक दुर्गंध उत्पन्न होकर संसार में बहुत रोग करके जीवों को जितनी पीड़ा पहुंचाते हैं उतना ही पाप तुमको अधिक होता है जैसे मेले आदि में अधिक दुर्गंध होने से "विसूचिका" अर्थात् हैज़ा आदि बहुत प्रकार के रोग उत्पन्न होकर जीवों को दुःखदायक होते हैं और न्यून दुर्गंध होने से रोग भी न्यून होकर जीवो को बहुत दुःख नहीं पहुंचता इससे तुम अधिक दुर्गंध बढ़ाने में अधिक अप-राधी और जो मुखपट्टी नही बांधते, दंतधावन, मुखप्रक्षालन, स्नान करके स्थान वस्त्रों को शुद्ध रखते हैं वे तुमसे बहुत अच्छे हैं। जैसे अंत्यजों की दुर्गंध के सहवास से पृथक् रहने वाले बहुत अच्छे है जैसे अंत्यजों की दुर्गंध के सहवास से निर्मल बुद्धि नहीं होती वैसे तुम और तुम्हारे संगियों की भी बुद्धि नहीं बढ़ती, जैसे रोग की अधिकता और बुद्धि के स्वल्प होने से धर्मानुष्ठान की बाधा होती है वैसे ही दुर्गंधयुक्त तुम्हारा और तुम्हारे संगियों का भी वर्त्तमान होता होगा" ॥ इत्यादि :—

इसलिये अब स्वामी श्री दयानंद सरस्वतीजी का लिखना पार्वती मान लेवे अन्यथा कान पकड़ लेवे कि आगे को ऐसा काम न करूंगी ! भूल गई ! आप क्षमा करें !

तदर्थ—पूर्वोक्त विषय में तो केवल पार्वती जी ने अपनी अज्ञानता ही प्रकट की है अन्य कुछ भी नहीं, क्योंकि पार्वती जी ने स्वामी जी के नाम से पूर्वोक्त वर्णन किया है तो क्या स्वामी जी मूर्ख शब्द को संस्कृत नही जानते थे भाषा जानते थे ? जो

पार्वती के लेखानुसार स्वामी जी ने झटपट लिख दिया कि भाषा भी लिखनी नहीं आती है ? यदि लिख भी दिया होवे तो इस से तो यह सिद्ध होता है कि स्वामीजी को ही पूर्वोक्त बात का ज्ञान नहीं था ? जो उन्होंने ऐसा लिख दिया कि भाषा भी लिखनी नहीं आती है—मूर्ख के स्थान में मूर्ष लिख दिया है ! क्या स्वामी जी मूर्ख शब्द को भाषा और मूर्ष को संस्कृत मानते थे, यदि ऐसे होवे तब तो स्वामी जी के ज्ञान का कुछ मान ही नहीं रहेगा ! जब कि स्वामी जी स्वतः भूल खागये तो और की भूल किस प्रकार बता सकते हैं ? अस्तु, क्या पार्वती जी स्वामी जी की बराबरी कर सकती है ? नहीं, कदापि नहीं, परंतु स्वामी जी के नाम की सहायता लेकर महात्मा श्री महाराज आत्मारामजी की अवज्ञा करने को तत्पर हुई है जिसका तात्कालिक फल यहां ही यह मिल गया है कि जिस से अपनी अज्ञानता और अयोग्यता विद्वज्जन-समूह में प्रकट कर बैठी, यदि पार्वती की पोथी देखी जावे तो आश्चर्य नहीं कि जितने पृष्ठ हैं उतने ही अशुद्धियों से भरे होवें ॥

यद्यपि पार्वती की अशुद्धियें निकालनी हमको उचित नहीं हैं, क्योंकि वह अबला है ? तथापि परीक्षक पुरुषों को ख्याल कराने वास्ते नमूनामात्र केवल दो पृष्ठ की कुछ अशुद्धियें लिखते हैं जिससे पार्वती जी की विद्वत्ता की परीक्षा होजावेगी ॥

पृष्ठ	अशुद्धम्	शुद्धम्
२	मिथ्यात्त्व	मिथ्यात्व
,,	वस्त्र	वस्त्र
,,	मुखवस्त्रिका	मुखवस्त्रिका
,,	सर्व्वदा	सर्वदा

पृष्ठ	अशुद्धम्	शुद्धम्
३	कठकम्मेवा	कट्ठकम्मे वा
”	पोथकम्मे वा	पोत्थकम्मे वा
”	लेपकम्मे वा	लिप्पकम्मे वा
”	गंठिम्मे वा	गंठिमे वा
”	वेढिम्मे वा	वेढिमे वा
”	पुरीम्मे वा	पूरिमे वा
”	सघाइमे वा	संघाइमे वा
”	अरके वा	अक्खेवा
”	सज्झाव	सब्भाव
”	असज्झाव	असब्भाव
”	आवस्सएति	आवस्सएत्ति
”	कज्जइ	किज्जइ

वस आप इसी से अनुमान करलें कि सारी किताव में कितनी अशुद्धियें होंगी ॥

विवेचक—सच बात तो यह है कि—जबसे श्रीमन्महामुनिराज श्रीमद्विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) महाराज जी साहिब का वनाया "सम्यक्त्वशल्योद्धार" ग्रंथ प्रसिद्ध हुआ है, तब से ही पार्वती के पेट में शूल होरहा था, जिसके हटाने वास्ते वाईस वर्ष पर्यंत अंदर ही अंदर सोच करती रही, आखिर में कितनेक पंडितों की सहायता पाकर थोथी पोथी छपवाकर ऊपर २ से दुःख हटाया मालूम देता है, परंतु अंदर तो दुःख वैसे का वैसा ही कायम है ॥ यदि न होता तो सम्यक्त्वशल्योद्धार का पूरा २ जवाव देती, केवल नाम लेकर भाग कर अलग न हो वैठती, मालूम होता है कि स्त्रीचरित्र खेला है, क्योंकि पार्वती ने सोचा होगा कि अगर मैं

सम्यक्त्वशल्योद्धार ग्रंथ का जवाब देने का दावा करूंगी तो उसमें जो २ सवाल किये गये हैं जैसे कि—मूत से गुदा धोनी, मूत से मुखपट्टी धोनी, इत्यादि बातों का क्या जवाब दूंगी ? अगर कहूंगी कि यह बात असत्य है,ढुंढिये यह काम नहीं करते हैं,तो मुझे सरासर झूठ का पाप लगेगा, क्योंकि ढुंढिये यह काम बराबर करते हैं इसमें कोई शक नहीं,और ढूंढिये साधु रात्रि को पानी नहीं रखते हैं, जब कभी पाखाने जाने वगैरह का काम पड़ जाता है तो मूत से ही काम लेते हैं यह अकसर आम मशहूर बात है. और जब मैं अपने हाथ से लिख दूंगी कि हां बेशक यह बात यानी पिशाब से गुदा धोनी मुखपट्टी धोनी इत्यादि काम ढुंढिये परंपरा से करते हैं, तो जिन लोगों को इस बात का पूरा २ पता नहीं है, और खासकर जो ढुंढिये श्रावक जिनको कि अब तक इस बात का पता तक भी नहीं है कि हमारे साधु सतियों का ऐसा ग़लीज़ (अपवित्र) काम है, एकदम हमारे से नफ़रत (घृणा) करने लग जावेंगे । इसवास्ते ऐसी बात में हाथ न डालना ही चतुराई का काम हैं, नहीं तो मुझको ही शरमाना पड़ेगा, इस से बेहतर यही है कि सम्यक्त्वशल्योद्धार के खंडन का नाम न लिया जावे और अपना काम बनाया जावे, कौन जानता है और कौन पूछता है कि सम्यक्त्वशल्योद्धार में क्या लिखा है और मैं क्या कहती लिखती हूं ?

तटस्थ—जो पुरुष न्यायदृष्टि से देखेगा आपही मालूम कर लेवेगा कि जिन २ बातों का जवाब सम्यक्त्वशल्योद्धार ग्रंथ में स्वामी श्रीआत्माराम जी महाराज जी ने दिया है,पार्वती ने अकसर अपनी पोथी में वही तर्क वितर्क प्रायः किये हैं अर्थात् पीसे हुए को ही पार्वती ने पीसा है, नया इसमें कुछ भी नहीं है ॥

और पृष्ठ २२ पर पार्वती ने लिखा है कि-"हां एक दो चेला चांटा पढ़वा लिया होगा परंतु पंजावी पीतांवरी तो वहुलता से यूं कहते हैं कि वल्लभविजय पुजेरा साधु संस्कृत वहुत पढ़ा हुआ है परंतु वल्लभ अपनी कृत गप्पदीपकाशमीर नाम पोथी संवत् १.९४८ की छपी पृष्ठ १४ में पंक्ति १४ में लिखता है कि लिखने वाली महा मृषावादी सिद्ध हुई-यह देखो वैयाकरणी वना फिरता है स्त्रीलिग शब्द को पुल्लिग में लिखता है क्योंकि यहां वादिनी लिखना चाहिये था इत्यादि"॥ परंतु यह नहीं विचारा है कि चेला चांटा नहीं है,वल्कि ढूंढकपंथ के वास्ते कांटा है, जो ऐसा डांटेगा कि याद करोगे। जरा अपने लेख पर ख्याल कर लेती पीछे "वैयाकरणी"वना फिरता है-लिखना ठीक था! इतनी सी इवारत में कितनी अशुद्धियें है?जिनके नीचे लकीर का निशान दिया गया है,स्वयं पार्वती देख लेवे? यदि कोई कसर है तो किसी डाकटर से आंखो का इलाज करा लेवे, हमारी समझ के अनुसार पार्वती के नेत्रों की जरूर दवाई होनी ठीक है क्योंकि आजकल इसको पुरुष भी स्त्री नज़र आते हैं, जो वैयाकरण के स्थान वैयाकरणी लिख दिया है, यह भी एक पार्वती के लिगज्ञान का नमूना है! पार्वती को इतना तो सोच करना था कि जिस वल्लभविजय ने मुझे मरद (ब्रह्मचारी) से औरत (ब्रह्मचारिणी) वना दिया है क्या उससे व्याकरण का "ऋणइप्" सूत्र भूला हुआ है? यदि वल्लभविजय को इस वात का पता न होता तो पार्वती को ब्रह्मचारीसे ब्रह्मचारिणी कौन बनाता! अपनी तरफ से कितनी ही होशीयारी कोई रखे प्रायः छापे की गलती हो जाना संभव है, पार्वती अपनी ही पोथी को देख लेवे कि अशुद्धिशुद्धिपत्र दे भी दिया है फिर भी कितनी

अशुद्धियें रह गई हैं ! सो इस बात का मान करना या दूसरे पर दोष लगाना प्रत्यक्ष महामूर्खता है ! वादिनी शब्द के दकार का ह्रस्व इकार और अंतका अक्षर नकार दो छापने में रह गये । दीर्घ ईकार दकार के साथ लग गया इस से वल्लभविजय को लिंगज्ञान नहीं है यह पार्वती का कहना बिलकुल योग्य नहीं है, अगर वल्लभविजय को लिंगका पता न होता तो हुई के ठिकाने भी होगया लिखा होता ! क्या वहां पार्वती हाथ पकड़ने को गई थी ? और अगर छापे की ग़लती पर ख्याल न किया जावे तो पार्वती ने वादिनी के ठिकाने वादिना लिखा सिद्ध हो जावेगा ! क्योंकि पार्वती की पोथी में वादिना छपा हुआ है,सो पार्वती आपही सोच लेवे कि किस लिंग का कौनसा वचन हो सकता है ? यह इस वास्ते लिखा है कि पार्वती कुछ व्याकरण में अपनी टांग फसाती सुनी जाती है ! वरना पार्वती के लिये ऐसी बात लिखना हम को योग्य नहीं है, और वल्लभविजय जी की बाबत अधिक निश्चय करना होवे तो अपने स्वामी जी उदयचंद जी से ही करलेना ! क्योंकि उनको अच्छी तरह अनुभव हो चुका है कि एक वल्लभविजय जी को जवाब देने के लिये सात पंडितों की सहायता स्वामी उदय चंद जी को लेनी पड़ी थी ! तो भी अभिप्राय पूरा नहीं हुआ ! इस बात से नाभा शहर के ब्राह्मण, क्षत्रीय, बानीये, मुसलमान सर्व प्रायः वाकिफ हैं, अथवा उस अवसर पर हाज़र हुए निज ढूंढकसेवकों ही को शपथ देकर पूछलेवे कि सच बतावो वल्लभविजय जी की कितनी शक्ति है ॥

जैनशास्त्रानुसार व्याकरण का बोध होना जरूरी है।

विवेचक—जिसको स्वयं व्याकरण का बोध नही या जिस मतमें प्रायो व्याकरण व्याधिकरण माना जाता है उसके कहने लिखने से क्या बनता है ? हाथी के पीछे कुत्ते भौंका ही करते है, परंतु देखो ! पार्वती ने सत्यार्थचंद्रोदय पुस्तक के पृष्ठ २३ से २८ तक संस्कृत व्याकरणादि के विषय में कैसी चालाकी दिखाई है जिसका तात्पर्य यही प्रकट होता है कि व्याकरणादि के पढ़ने की कोई ऐसी जरूरत नही है ? अर्थात् प्रकट पाया जाता है कि ढुंढिये साधू साध्वी प्रायो व्याकरणादि के पढ़े हुए नही हैं, और ग्रंथ बनाने का साहस करबैठते है जैसाकि पार्वतीने किया है तो अब ऐसी चालाकी की जावे कि लोगों को यह मालूम न हो कि पार्वती व्याकरण पढ़ी हुई नही है या ढुंढिये व्याकरण को नही जानते है। परंतु अनजान लोगों में ही यह चालाकी काम आवेगी, पंडित लोगों मे तो उलटी हासी ही होवेगी! यदि इस बात का निश्चय किसी को नही आता है तो पार्वती की बनाई पोथी किसी साक्षर निष्पक्षपाती पंडित को दिखाकर अनुभव कर लेवे ! और यदि समग्र पुस्तक देखने दिखाने का अवकाश न होवे तो केवल नमूने के वास्ते पृष्ठ २४ पंक्ति ५–६ " ज्ञानावर्णी कर्मके क्षयोपसम से" "मोहनी कर्म के क्षयोपसम" पृष्ठ २५ पंक्ति ५ 'अणाश्रवी' " सम्वर " तथा पंक्ति ६ " ते (सो) पुरुष शुद्ध धर्म आख्याती (कहते हैं) " पृष्ठ २६ पंक्ति २ " मिथ्यातियों " इतना ही दिखा लेवे ! और शुद्ध करालेवे ॥

पार्वती का प्रायः जितना ज्ञान है, शुकपाठ के समान है,

जैसे तोता (पोपट) राम राम कहता है परंतु परमार्थ को नहीं समझता है, ऐसा ही इसका हाल है! क्योंकि पार्वती प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति, लिंग, वचनादि व्याकरण के ज्ञान से प्रायः खाली है। जबकि पार्वती व्याकरण के परमार्थ को नहीं जानती है तो यद्यपि इस अबला के लिखने पर हमको प्रबला (जबरदस्त) युक्ति की जरूरत नहीं है, तथापि भोले लोगों के दिल में पार्वती का अनुचित लेख पढ़के या सुनके यह निश्चय न हो जावे कि जैन-सिद्धांत अनाड़ी के बनाये होवेंगे कि जिनमें व्याकरणादि के नियमों की कोई जरूरत नहीं पड़ती है, तथा वह विचारे पार्वती के लेखको सच्चा मानकर जैनसिद्धांत के बनाने वाले धुरंधर पंडितों का पार्वतीवत् अनादर करने से दुर्गति के भागी न हो जावें! इस लिये कितनेक जैनसिद्धांतों के पाठमात्र लिख दिखाते हैं कि जिस से पाठकवर्ग को यह विदित होगा कि और और मतके सिद्धांत तो संस्कृतव्याकरण के पढ़ने से ही मार्ग देदेते हैं, परंतु जैनमत के सिद्धांत तो संस्कृत और प्राकृत दोनों ही व्याकरण पढ़ने वालों को मार्ग देते हैं, अन्य को नहीं. और इसीलिये संस्कृत पढ़ना जरूरी है, क्योंकि विना संस्कृत के पढ़े प्राकृत व्याकरण का पढ़ना नहीं हो सकता है, और प्राकृत व्याकरण के बोध विना जैनसिद्धांत का यथार्थ अर्थ मालूम नहीं हो सकता है, यही कारण है कि केवल संस्कृत पढ़े पंडित लोग जैनसिद्धांत का परमार्थ नहीं पा सकते हैं॥

तटस्थ—आप व्याकरण संबंधी पाठ वर्णन करें जिस से पार्वती जी का जो असली सिद्धांत है कि व्याकरण के पढने की कोई खास जरूरत नहीं है, धूंदके बद्दल की तरह उड़जावे, और लोगों को यह दृढ़ निश्चय हो जावे कि इन पाठों के अनुसार

व्याकरण का पढ़ना जरूरी है ॥ ढुंढिये साधु प्रायः व्याकरण नहीं पढ़ते हैं तो इस से साफ ज़ाहिर है कि वह स्वतः नही समझ सकते हैं कि अमुक शब्द का क्या अर्थ है ? हां बेशक भाषा में लिखा अर्थ, जिसको टब्बा कहते है, उसको घोक घोक कर अपना निर्वाह करते हैं, यही कारण है कि जैनी साधुओं और ढुंढियों में कितने ही शब्दों के अर्थों में फरक पड़ता है, क्योंकि जैनी साधु प्राचीन टीका जो संस्कृत प्राकृत में विद्यमान हैं मानते हैं, और जहां कहीं प्रमाण देने की जरूरत पड़ती है प्राचीन टीका का ही प्रमाण देते हैं परंतु ढुंढियों के पास इस बात की गंध भी नहीं है इसीलिये पंडितो की सभा में ढुंढिये पराजय को प्राप्त होते है !

विवेचक—प्रथम श्रीअनुयोगद्वार सूत्रका पाठ क्रम से पढ़ो और विचारो कि यह पाठ व्याकरण के शास्त्र के बोध विना ठीक ठीक समझ में आ सकता है ?

(१) श्रीअनुयोगद्वार सूत्र में छे प्रकार व्याख्या का लक्षण प्रतिपादन किया है—

तथाहि—

संहिया य पयं चेव, पयत्थो पयविग्गहो
चालणा य पसिध्धीय, छव्विहं विध्धि लक्खणं ॥१

व्याख्य—तत्र व्याख्यालक्षणमेव तावदाह । संहियायेत्यादि । तत्रास्खलित पदोच्चारणं संहिता यथा करोमि भयांत सामायिकमित्यादि । इहतु करोमीत्येकं पदं भयात इति द्वितीयं सामायिकमिति तृतीयं इत्यादि । पदार्थस्तु करोमीत्यभ्युगमो भयांत इति गुर्वामंत्रणं समस्यायः समायः समाय एव सामायिकमित्यादिकः । पदविग्रह

समासः सचानेकपदानामकत्वापादान विषयो यथा भयस्यांतो-भयांत इति । सूत्रस्यार्थस्य वानुपपत्त्युद्भावनं चालना । अस्या एवानेकोपपत्तिभिस्तथैव, स्थापनं प्रसिद्धिः। एते च चालना प्रसिद्धी आवश्यके सामायिकव्याख्यावसरे स्वस्थान विस्तरवत्यौद्रष्टव्ये । एवं षड्विधं विद्धि जानीहि लक्षणं व्याख्याया इति प्रक्रमाद्गम्यते इति श्लोकार्थः ।

पूर्वोक्त छै प्रकार के लक्षणोंमें से संहिता, पद, पदार्थ, और पदविग्रह (समास) यह चारतो व्याकरण संबंधी हैं और चालना तथा प्रसिद्धि यह दो न्याय संबंधी हैं इससे स्वतः सिद्ध है कि व्याकरण और न्याय का पढ़ना अत्यावश्यकीय है, यदि शब्दशास्त्र तथा तर्कशास्त्र से अनभिग होगा तो वह पूर्वोक्त षड्विध लक्षण को यथार्थ किस प्रकार समझ सकता है ?

(२) लो पूर्वोक्त शास्त्र का और पाठ पढ़ो जिससे संधि आदि व्याकरण शास्त्र की रीति का विशेष प्रतिभान होता है—

तथाहि—सेकिंतं चउणामे २ चउव्विहे पण्णत्ते—तंजहा—आगमेणं लोवेणं पयईए विगारेणं । सेकिंतं आगमेणं आगमेणं पद्मानि पयांसि कुंडानि सेतं आगमेणं । सेकिंतं लोवेणं लोवेणं ते अत्र तेत्र पटो अत्र पटोत्र घटो अत्र घटोत्र सेतं लोवेणं। सेकिंतं पगईए पगईए अग्नी एतौ पटू इमौ शाले एते माले इमे सेतं पगईए । सेकिंतं विगारेणं २ दंडस्य अग्रं दंडाग्रं सा आगता सागता

दधि इदं दधीदं नदी इह नदीह मधु उदकं मधूदकं वधू उह वधूह सेतं विगारेणं सेतं चउनामे

॥ व्याख्या ॥ संकितं चउणामे इत्यादि—आगच्छतीत्यागमो न्वागमादिस्तेन निष्पन्नं नाम यथा पद्मानीत्यादि " घुटस्वरादीसुरित्यनेनात्र न्वागमस्य विधानादुपलक्षणमात्रं चेदं संस्कार उपस्कार इत्यादेरपि सुडाद्यागमनिष्पन्नत्वादिति । लोपो वर्णापगमरूपस्तेन निष्पन्नं नाम यथा तेत्रेत्यादि "एदोत्परः पदान्ते " इत्यादिना अकारस्येह लुप्तत्वान्नामत्वं चात्र तेन तेन रूपेण नमनान्नामेति व्युत्पत्तेरस्त्येवेतीत्थमन्यत्रापि वाच्यं उपलक्षणं चेदं मनस् ईषा मनीषा बुद्धिः भ्रमतीति भ्रूरित्यादेरपिसकारमकारादिवर्णलोपेन निष्पन्नत्वादिति। प्रकृतिः स्वभावो वर्णलोपाद्यभावस्तया निष्पन्नं नाम यथा अग्नी एतावित्यादि "द्विवचनमनौ " इत्यनेनात्र प्रकृतिभावस्य विधानान्निदर्शनमात्रं चेदं सरसिजकंठेकालइत्यादीनामपि प्रकृतिनिष्पन्नत्वादिति । वर्णस्यान्यथा भावापादनं विकारस्तेन निष्पन्नं दडस्याग्रं दंडाग्रमित्यादि " समानः सवर्णे दीर्घो भवति " इत्यादिना दीर्घत्वलक्षणस्य वर्णविकारस्येह कृतत्वादुदाहरणमात्रं चैतत् तस्करः षोडशेत्यादिरपि वर्णविकारसिद्धत्वादिति । तदिह यदस्ति तेन सर्वेणापि नाम्ना आगमनिष्पन्नेन वा लोपनिष्पन्नेन वा प्रकृतिनिष्पन्नेन वा विकारनिष्पन्नेन वा भवितव्यम् ॥

(३) और भी पूर्वोक्त शास्त्र का पाठ पढ़ो जिस से विभक्तिज्ञान द्वारा कारक प्रकरण का ज्ञान भान होता है—तथाहि :—

अट्ठविहा वयणविभत्ती पण्णत्ता, तंजहा—निद्देसे पढमा होइ, बितीया उवएसणे ।

तईया करणंमि कया, चउत्थी संपयावणे ॥ १ ॥
पंचमी अ अवायाणे, छट्ठी सस्सामि वायणे ।
सत्तमी सण्णिहाणत्थे, अट्ठमी आमंतणी भवे ॥ २ ॥
तत्थ पढमा विभत्ती निद्देसे सो इमो अहं वत्ति ॥१॥
बिईया पुण उवएसे भण कुणसु इमं व तं वत्ति ॥२॥
तईआ करणंमि कया भणिअं च कयं च तेण वमएवा ।३।
हंदि णमो साहाए हवइ चउत्थी पयाणंमि ॥४॥
अवणय गिण्ह य एत्तो इओत्ति वा पंचमी अपायाणे॥५
छट्ठी तस्स इमस्स व गयस्स वा सामिसंबंधे ॥ ६ ॥
हवइ पुण सत्तमी तं इमंमि आहारकालभावे य ॥७॥
आमंतणी भवे अट्ठमी उ जहा हे जुवाणत्ति ॥ ८ ॥

व्याख्या—उच्यंत इति वचनानि वस्तुवाचीनि विभज्यते प्रकटी क्रियतेऽर्थोऽनयेति विभक्तिः वचनानां विभक्तिर्वचनविभक्ति-र्नाख्यातविभक्तिरपि तु नामविभक्तिः प्रथमादिकेतिभावः । साचाष्ट विधा तीर्थंकरगणधरैः प्रज्ञप्ता । कापुनरियमित्याशंक्य यस्मिन्नर्थे या विधीयते तत्प्रदिनामष्टविधामपि विभक्तिं दर्शयितुमाह तद्यथे-त्यादि । निद्देसे इत्यादि श्लोकद्वयं निगदसिद्धं नवरं लिंगार्थमात्र प्रतिपादनं निर्देशस्तत्र सि औ जस् इति प्रथमा विभक्तिर्भवति । अन्यतर क्रियायां प्रवर्त्तनेच्छोत्पादनमुपदेशस्तस्मिन् अम् औ शस् इति द्वितीया विभक्तिर्भवत्युपलक्षणमात्रं चेदं कटं करोतीत्यादेस्तूप-देशमंतरेणापि द्वितीया विधानादेवमन्यत्रापि यथासंभवं वाच्यं । विवक्षिताक्रियासाधकतमं करणं तस्मिंस्तृतीया कृता विहिता ।

संप्रदीयते यस्मै तद्गवादिदानविषयभूतं संप्रदानं तस्मिंश्चतुर्थी विहिता। अपादीयते वियुज्यते तस्मात्तद्वियुज्यमानावधिभूतमपादानं तत्र पंचमी विहिता । स्वमात्मीयं सचित्तादि स्वामी राजा तयोर्वचने तत्संबंधी प्रतिपादने षष्ठी विहिते त्यर्थः। संनिधीयते आधीयते यस्मिस्तत्संनिधानमाधारस्तदेवार्थस्तास्मिन् सप्तमी विहिता। अष्टमी संबुद्धिरामंत्रणी भवेदामंत्रणार्थे विधीयत इत्यर्थः । एनमेवार्थं सोदाहरणमाह । तत्थ पढमेत्यादिगाथाश्चतस्रो गतार्था एव नवरं प्रथमा विभक्तिर्निदेशे क यथा इत्याह सो इमोत्ति अयं अहं वेति वा शब्द उदाहरणांतरसूचकः॥उपदेशे द्वितीया क यथा इत्याहि भण कुरु वा किं तदित्याह इदं प्रत्यक्षं तद्वा परोक्षमिति । तृतीया करणे क यथेत्याह भणितं वा कृतं वा केनेत्याह तेन वा मयावेति अत्र यद्यपि कर्त्तरि तृतीया प्रतीयते तथापि विवक्षाधीनत्वात्कारक प्रवृत्तेस्तेन मया वा कृत्वा भणितं कृतं वा देवदत्तेन गम्यत इत्येवं करणविवक्षापि न दुष्यतीति लक्षयामस्तत्त्वं तु बहुश्रुता विदंतीति । हंदि नमो साहाए इत्यादि हंदीत्युपदर्शने नमो देवेभ्यःस्वाहा अग्नये इत्यादिषु संप्रदाने चतुर्थी भवतीत्येके अन्ये तूपाध्यायाय गां ददातीत्यादिष्वेव संप्रदाने चतुर्थीमिच्छंति । अपनय गृहाण एतस्मादितो वा इत्येवमपादाने पंचमी । तस्य अस्य गतस्य वा कस्य भृत्यादेरिति गम्यते इत्येवं स्वस्वामिसंबंधे षष्ठी । तद्वस्तु बदरादिकं अस्मिन् कुंडादौ तिष्ठतीति गम्यते इत्येवमाधारे सप्तमी भवति तथा कालभावत्ति कालभावयोश्चेयं द्रष्टव्या तत्र काले यथा मधौ रमते भावे तु चारित्रेऽवतिष्ठते । आमंत्रणे भवेवेदष्टमी यथा हे युवन्निति वृद्धवैयाकरणदर्शनेन चेयमष्टमी गण्यते इदं युगानां त्वसौ प्रथमेति मंतव्यम् । इह च नामविचार प्रस्तावात्

प्रथमादिविभक्त्यंतं नामैवगृह्यते तथाष्टविभक्तिभेदादष्टविधं च भवति न च प्रथमादि विभक्त्यंतनामाष्टकमंतरेणापरं नामास्त्यतो नामाष्टकेन सर्वस्य वस्तुनोभिधानद्वारेण संग्रहादष्टनामेदमुच्यते इति भावार्थः ॥

(४) इसी प्रकार श्रीस्थानांग सूत्रके अष्टमस्थान में विभक्ति-स्वरूप प्रतिपादन किया है :—

५—तथा और भी श्रीअनुयोगद्वार सूत्र का पाठ पढ़ो और विचार करो कि जिसको व्याकरण का बोध न होगा वह सूत्रपाठोक्त समास तध्दित धातु निरुक्त संबंधि नाम का ज्ञान प्राप्त कर सकेगा ? कदापि नहीं,क्यूंकि विना शब्दशास्त्र के बोधके समासादि का ज्ञान कदापि नहीं होसकता है और समासादि के ज्ञान विना समासादिक से उत्पन्न हुए नामादिका ज्ञान नहीं होसकता—तथाच तत्पाठः ॥

भावपमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा । समासिए तद्धितए धाउए निरुत्तए सेकिंतं समासिए २ सत्त समासा भवंति—तंजहा—दंदेअ बहुव्वीही कम्मधारए दिगुअ तप्पुरिसे अव्वईभावे एक्कसेसे अ सत्तमे । से किंतं दंदे दंदे दंताश्च ओष्ठौ च दंतौष्ठं स्तनौ च उद-रंच स्तनोदरं वस्त्रं च पात्रं च वस्त्रपात्रं अश्वश्च महिषश्च अश्वमाहिषं अहिश्च नकुलश्च अहिनकुलं सेतं दंदे सेकिंतं बहुव्वीही समासे २ फुल्ला इमंमि गिरिंमि कुडयकयंबा सो इमो गिरी फुल्लियकुडयकयंबो सेतं बहुव्वीही समासे। सेकिंतं कम्मधारए २ धवलो वसहो धवलवसहो किण्हो मियो किण्हामियो सेतो पडो सेत-

पडो रत्तो पडो रत्तपडो से तं कम्मधारए । सेकिंतं दिगु-
समासे २ तिण्णि कडुगाणि तिकडुगं तिण्णि महुराणि
तिमहुरं तिण्णि गुणाणि तिगुणं तिण्णि पुराणि तिपुरं
तिण्णि सराणि तिसरं तिण्णि पुक्खराणि तिपुक्खरं
तिण्णि बिंदुआणि तिबिंदुअं तिण्णि पहाणि तिपहं पंच
नदीओ पंचनदीं सत्त गया सत्तगयं नव तुरंगा नव-
तुरंगं दस गामा दसगामं दस पुराणि दसपुरं सेतं दिगु-
समासे। से किं तं तप्पुरिसे तप्पुरिसे तित्थे कागो तित्थ-
कागो वणे हत्थी वणहत्थी वणे वराहो वणवराहो वणे
महिसो वणमहिसो वणे मयूरो वणमयूरो सेतं तप्पुरिसे ।
से किं तं अव्वइभावे अव्वइभावे अणुगामा अणुणइया
अणुफरिहा अणुचरिआ सेतं अव्वइभावे । से किं तं
एगसेसे एगसेसे जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा जहा
बहवे पुरिसा तहा एगोपुरिसो जहा एगो साली तहा बहवे
साली जहा बहवे साली तहा एगो साली सेतंएगसेसे।सेतं
समासिए।से किं तं तध्धितए ताद्धितए अठविहे पण्णत्ते।
तंजहा।कम्मेसिप्पसिलोए संजोगसमीवओ अ संजूहे।
ईस्सरिअ अवच्चेणय ताद्धितणामं तु अठविहं ॥१॥ से
किं तं कम्मनामे कम्मनामे तणहारए कट्ठहारए पत्त-

हारए दोसिए सोत्तिए कप्पासिए भंडवेआलिए कोला-लिए सेतं कम्मनामे । से किं तं सिप्पनामे सिप्पनामे तुण्णए तंतुवाए पट्टकारे मुंजकारे कठ्ठकारे छत्तकारे पोत्थकारे चित्तकारे दंतकारे लेप्पकारे सेतं सिप्पनामे । से किं तं सिलोअनामे सिलोअनामे समणे माहणे सव्वातिही सेतं सिलोगनामे । से किं तं संजोगनामे संजोगनामे रण्णो ससुरए रण्णो जमाउए रण्णो साले रण्णो दूए रण्णो भगिणीपइ सेतं संजोगनामे । से किं तं समीवनामे समीवनामे गिरिसमीवे णगरं गिरिणगरं विदिसि समीवे णगरं विदिसिणगरं वेनाय समीवे णगरं वेनायणगरं सेतं समीवणामे । से किं तं संजूह नामे संजूहनामे तरंगवइकारे मलयवइकारे अत्ताण सठ्ठिकारे बिंदुकारे सेतं संजूहनामे । से किं तं ईस्सरि-अनामे ईस्सरिअनामे ईसरे तलवरे माडंबिए कोडुंबिए इब्भे सेठी सत्थवाहे सेणावइ सेतं इस्सरिअनामे । से किं तं अवच्चनामे अवच्चनामे अरिहंतमाया चक्कवट्टिमाया बलदेवमाया वासुदेवमाया रायमाया मुणिमाया वाय-गमाया सेतं अवच्चनामे । सेतं तध्धियए । से किं तं धाउए धाउए भू सत्तायां परस्मैभाषा एध वृध्धौ स्पर्ध्ध संहर्षे

सेतं धाउए । से किं तं निरुत्तए २ मह्यां शेते महिषः भ्रमति च रौतीति भ्रमरः मुहुर्मुहुर्लसतीति मुसलं कपेरिव लंबते कपित्थं चिच्च करोति खल्लं च भवति चिक्खल्लं ऊर्ध्वं कर्णः उलूकः से तं निरुत्तए से तं भावपमाणे ॥

व्याख्या—भावप्पमाणे इत्यादि—भावो युक्तार्थत्वादिको गुणः स एव तद्द्वारेण वस्तुना परिच्छिद्यमानत्वात् प्रमाणं तेन निष्पन्नं तदाश्रयेण निर्वृत्तं नाम सामासिकादि चतुर्विधं भवति इत्यत्र परमार्थः तत्र से कि तं समासिए इत्यादि—द्वयोर्बहूनां वा पदानां समसनं संमीलनं समासस्तन्निर्वृत्तं सामासिकं समासाश्च द्वंद्वादयः सप्त तत्र समुच्चयप्रधानो द्वंद्वः दंताश्चोष्ठौ च दंतौष्ठं स्तनौ च उदरं च स्तनोदरमिति प्राण्यंगत्वात् समाहारः । वस्त्रपात्रमित्यादौ त्वप्राणि जातित्वादश्वमाहिषमित्यादौ पुनः शाश्वतिकवैरित्वादेवमन्यान्यप्युदाहरणानि भावनीयानि । अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः पुष्पिताकुटजकदंबा यस्मिन् गिरौ सोयं गिरिः पुष्पितकुटजकदंबः । तत्पुरुषसमानाधिकरणः कर्मधारयः सच धवलश्चासौ वृषभश्च धवलवृषभ इत्यादि । संख्यापूर्वो द्विगुः त्रीणि कटुकानि समाहृतानि त्रिकटुकं एवं त्रीणि मधुराणि समाहृतानि त्रिमधुरं पात्रादिगणे दर्शनदिह पंचमूलीत्यादिष्विव स्त्रियामीप् प्रत्ययो न भवत्येवं शेषाण्यप्युदाहरणानि भावनीयानि । द्वितीयादिविभक्त्यंतपदानां समासस्तत्पुरुषस्तत्र तीर्थे काक इवास्ते तीर्थकाकः इति सप्तमी तत्पुरुषः शेषं प्रतीतं । पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावस्तत्र ग्रामस्य अनुसमीपेन मध्येन वा निर्गता अनुग्रामं एवं नद्याः समीपेन मध्येन वा निर्गता अनुनदी-

स्याद्यपि भावनीयं। सरूपाणामेकशेष एकविभक्ताविल्यनेन सूत्रेण समानरूपाणामेकविभक्तियुक्तानां पदानामेकशेषः समासो भवति सति समासे एकः शिष्यतेऽन्ये तु लुप्यंते यश्च शेषोवतिष्ठते स आत्मार्थे लुप्तस्य लुप्तयोर्लुप्तानां चार्थे वर्त्तते। अथ एकस्य लुप्तस्यात्मनश्चार्थे वर्त्तमानात्तस्मात् द्विवचनं भवति यथा पुरुषश्च पुरुषश्चेति पुरुषौ। द्वयोश्च लुप्तयोरात्मनश्चार्थे वर्त्तमानाद्बहुवचनं यथा पुरुषश्च३ पुरुषाः एवं बहूनां लुप्तानामात्मनश्चार्थे वर्त्तमानादपि बहुवचनं यथा पुरुषश्च ४ पुरुषा इति जातिविवक्षायां तु सर्वत्रैक वचनमपि भावनीयमितः सूत्रमनुश्रियते—जहा एगो पुरिसोत्ति—यथैकः पुरुषः एकवचनांतपुरुषशब्द इत्यर्थः एकशेषे समासे सति बह्वर्थवाचक इतिशेषः—तहा बहवे पुरिसत्ति—तथा बहवः पुरुषाः बहुवचनांत पुरुषशब्द इत्यर्थः एकशेषे समासे सति बह्वर्थवाचक इतिशेषः यथाचैकशेषे समासे बहुवचनांत पुरुषशब्दः बह्वर्थवाचक स्तथैकवचनांतोपीति न कश्चिद्विशेष एतदुक्तं भवति यदा पुरुषश्च ३ इति विधाय एकपुरुषशब्दशेषता क्रियते तदा यथैकवचनांतः पुरुषशब्दो बह्वर्थान् वक्ति तथा बहुवचनांतोपि यथा बहुवचनांतस्तथैकवचनांतोपीति न कश्चिदेकवचनांतत्वबहुवचनांतत्वयोर्विशेषः केवलं जातिविवक्षायामेकवचनं बह्वर्थविवक्षायां तु बहुवचनमिति एवं कार्षापणशाल्यादिष्वपि भावनीयं। अयं च समासो द्वंद्वविशेष एवोच्यते केवलमेकशेष तत्र विधीयते इत्येतावता पृथगुपात्त इति लक्ष्यते तत्त्वं तु सकलव्याकरणवेदिनो विदंतीत्यलमति विजृंभितेन। गतं सामासिकं। से किं तं तद्धितए इत्यादि—

तद्धिताज्जातं तद्धितजं इह तद्धितशब्देन तद्धितप्रत्ययहेतुभूतोर्थो गृह्यते ततो यत्रापि तुन्नाए तंतुवाए इत्यादौ तद्धितप्रत्ययो न दृश्यते तत्रापि तद्धेतुभूतार्थस्य विद्यमानत्वात्तद्धितजं सिद्धं भवति—

कम्मेगाहा—पाठसिद्धा—नवरं श्लोकः श्लाघा संयूथो ग्रंथरचना एते च कर्मशिल्पादयोऽर्थास्तद्धितप्रत्ययस्योत्पित्तिर्निमित्ती भवंतीत्येत-द्भेदात्तद्धितजं नामाष्टविधमुच्यते इति भावस्तत्र कर्मतद्धितज-दोसिए सोत्तिए इत्यादि—दूष्यं पण्यमस्येति दौषिकः सूत्रं पण्यमस्येति सौत्रिकः शेषं प्रतीतं नवरं भांडविचारः कर्मास्येति भांडवैचारिकः कौलालानि मृद्भांडानि पण्यमस्येति कौलालिकः अत्र क्वापि तण-हारए इत्यादि पाठो दृश्यते तत्र कश्चिदाह नन्वत्र तद्धितप्रत्ययो न कश्चिदुपलभ्यते तथा वक्ष्यमाणेष्वपि तुन्नाए तंतुवाए इत्यादिषु नायं दृश्यते तत् किमित्येवं भूतनाम्नामिहोपन्यासोऽत्रोच्यते अस्मादेव सूत्रोपन्यासात्तृणानि हरति वहतीत्यादिकः कश्चिदाद्यव्याकरण-दृष्टस्तद्धितोत्पत्तिहेतुभूतोऽर्थो द्रष्टव्यस्ततो यद्यपि साक्षात् तद्धित-प्रत्ययो नास्ति तथापि तदुत्पत्तिनिबंधनभूतमर्थमाश्रित्येह तन्निर्देशो न विरुध्यते यदि तद्धितोत्पत्तिहेतुरर्थोऽस्ति तर्हि तद्धितोपि कस्मा-न्नोत्पद्यत इतिचेत् लोके इत्थमेव रूढत्वादिति ब्रूमः अथवा अस्मा देवाद्य मुनिप्रणीतसूत्रज्ञापकादेवं जानीयास्तद्धितप्रत्यय एवामी केचित्प्रतिपत्तव्या इति। अथ शिल्पतद्धित नामोच्यते। वत्थं शि-ल्पमस्येति वास्त्रिकः तंत्रीवादनं शिल्पमस्येति तांत्रिकः तुन्नाए तंतुन्नाए प्रतीतमाक्षेपपरिहारावुक्तावेव यच्चेह पूर्वं च क्वचिद्वाचना विशेषे प्रतीतं नाम दृश्यते तद्देशांतर-रूढितोऽवसेयम। अथ श्लाघातद्धित नामोच्यते। समणे इत्यादि—श्रमणादीनि नामानि श्लाघ्येष्वर्थेषु साध्वादिषु रूढान्यतोऽस्मादेव सूत्रनिबंधनात् श्लाघ्यार्थास्तद्धिता-स्तदुत्पत्तिहेतुभूतमर्थमात्रं वा अत्रापि प्रतिपत्तव्यम। संयोगतद्धित-नाम राज्ञः श्वसुर इत्यादि—अत्र संबंधरूपः संयोगो गम्यते अत्रापि चास्मादेव ज्ञापकात् तद्धितनामता चित्रं च पूर्वगतं शब्दप्राभृतम-प्रत्यक्षं चातः कथमिह भावना स्वरूपमस्मादृशैः सम्यगवगम्यते।

समीपतद्धितनाम। गिरिसमीपे नगरं गिरिनगरमत्रादूरभवश्चेत्यण् न भवति गिरिनगरमित्येवं प्रतीतत्वात् विदिशाया अदूरं भवं नगरं वैदिशमत्रत्वदूरभवश्चेत्यण् भवत्येवेत्यर्थं रूढत्वादिति। संयूथतद्धितनाम-तरंगवइक्कारए-इत्यादि तद्धितनामताचेहोत्तरत्र च पूर्ववद्भावनीया। ऐश्वर्यतद्धितनाम राईसरे इत्यादि इह राजादिशब्दनिबंधनमैश्वर्य-मेवावगंतव्यं राजेश्वरादिशब्दार्थस्त्विहैव पूर्वं व्याख्यात एव। अपत्य-तद्धितनाम-तित्थर माया इत्यादि-तीर्थकरोऽपत्यं यस्याः सा तीर्थकर-माता एवमन्यत्रापि सुप्रसिद्धेनाप्रसिद्धं विशिष्यते अतः तीर्थकरा-दिभिर्मातरो विशेषितास्तद्धितनामत्वभावना तथैव गतं तद्धितनाम। अथ धातुजमुच्यते। से किं तं धाउए इत्यादि भूरयं परस्मैपदी धातुः सत्तालक्षणस्यार्थस्य वाचकत्वेन धातुजं नामेत्येवमन्यत्रापि अभिधा-नाक्षरानुसारतो निश्चितार्थस्य वचनं भणनं निरुक्तं तत्र भवं नैरुक्तं तच्च मह्यां शेते महिषं इत्यादिकं पाठसिद्धमेवेत्यादि।

(६) तथा श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्र के पाठ से भी व्याकरणज्ञान संपादन करना अत्यावश्यकीय सिद्ध होता है॥ तथा च तत्पाठः—

नामक्खाय निवात उवसग्ग तद्धिय समास संधिपय हेउ जोगिय उणाइ किरिया विहाण धातुसर विभत्तिवण्णजुत्तं। इति सप्तमाध्ययने।

व्याख्या—तथा नामाख्यातनिपातोपसर्गतद्धितसमाससंधिपदहेतुयोगिकोणादिक्रियाविधानधातुस्वरविभक्तिवर्णयुक्तं (वक्तव्य-मितिशेषः) तात्पर्य्य यह है कि नाम, आख्यात, निपातादि युक्त वचनोच्चार सत्य में गिना जाता है, इसवास्ते पूर्वोक्त वस्तु का ज्ञान अवश्यमेव करना उचित है और यह ज्ञान व्याकरण के बोध विना कदापि नहीं होसक्ता है अतो बलात्कार व्याकरण का पढ़ना सिद्ध होता है।

(७) तथा कितने ही पाठ यह सिद्ध करते हैं कि जो व्याकरण की रीति से अनभिज्ञ है वह कदापि उसका यथार्थ अर्थ नहीं समझ सक्ता है. नमूनामात्र श्रीदशवैकालिक सूत्र के नवमाध्ययन के तृतीयोद्देशक की एक गाथा लिखी जाती है, जिसका अक्षरार्थ विना व्याकरण शास्त्र की रीति के कोई भी ढुंढकमतानुयायी कर देवे तो फिर हम भी कह देवेंगे कि व्याकरण के पढ़ने की कोई असावश्यकता नहीं है, वह पाठ यह है ॥

गुणेहिं साहू अगुणेहिं साहू ।
गिण्हाहि साहू गुणमुचं साहू ॥
विआणिआ अप्पगमप्पएणं ।
जो रागदोसे हिं समो स पुज्जो ॥११॥ इति

तटस्थ-देशक ! इन पाठों से व्याकरण का पढ़ना जरूरी मालूम देता है और इसी वास्ते वेधड़क होकर पार्वती ने निषेध नहीं किया मालूम देता है ।

विवेचक-इसमें क्या शक है, इसी लिये तो पार्वती को चाकाक मानते है, नीतिकार का भी कथन है कि "स्त्रियाचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः" परंतु देखना इस चालाकी ने ही खैदान मैदान कर देना है । ज़रा शास्त्रों के पाठ को तो शोच लिया करे, सब ही जगह "तथा काले तथा धौले" न किया करे । किसी ने परमाधार्मियों के मुद्गर से नहीं बचाना है, श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्र के सातवें अध्ययन के पाठ की वावत वृथा अपनी अज्ञता क्यो दिखानी थी ? क्योंकि परमार्थ के जानकार तो पार्वती के लिखे अर्थ से ही श्रीस्वामी आत्मारामजी का सम्यक्त्वशल्योद्धार ग्रंथ में लिखा अर्थ सत्य ही मानते हैं, बाकी अज्ञपुरुषों का तो कहना ही क्या है ? जो मरजी में आवे सो बके ।

क्योंकि पार्वती ने स्वामीश्रीआत्मारामजी का लिखा व्याकरण पढ़ने सम्बन्धि श्रीप्रश्नव्याकरण सूत्र का लेख असत्य करने के इरादे से अस्तोव्यस्त मतलब बिना का ढकौंसला मारा है "उक्त सूत्र में तो पूर्वोक्त वचन की शुद्धि कही है यों तो नहीं कहा कि संस्कृत बोले बिना सत्य व्रत ही नहीं होता है" परंतु जरा आंख-मीट-के सोचना तो था कि मैं क्या लिखने लगी हूं, इस लेख से मैं आप ही झूठी हो जाऊंगी. मेरे ही मुख में खांड दीजावेगी, क्या अशुद्धवचन बोलने वाले को झूठ बोलने का दोष नहीं लगता है? बराबर लगता है. तो फिर साबत होचुका कि शुद्धवचन बोलने वाले का सत्य व्रत आराधन होता है, अशुद्ध वचन बोलने वाले का नहीं, जब यह सिद्ध हुआ तो स्वामी श्रीआत्मारामजी का लिखा ठीक २ सत्य सिद्ध होगया, और पार्वती का लिखा बिलकुल असत्य सिद्ध होगया, यदि यह बात नहीं है अर्थात् वचन चाहे शुद्ध बोले, चाहे अशुद्ध, झूट बोलने का दोष नहीं लगता, ऐसा पार्वती का निश्चय है तो पार्वती को साधु और पूज्य सोहनलाल जी को साध्वी कहने वालों को पार्वती के माने मूजिब दोष नहीं लगना चाहिये? बस ऐसे होने पर पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग— (मुज़क्कर, मुवन्नस, मुखन्नस) एक वचन द्विवचन बहुवचन— (वाहिद, जमा) अतीत, वर्तमान, अनागत-(माज़ी, हाल, मुस्तकबिल) इत्यादि रीति (कायदों) के बताने वाले व्याकरण (ग्रामर) के बताने वाले सब झूठे हो जावेंगे, क्या जरूरत है? जो मरज़ी में आवे सो कह देवे? फिर क्या कारण है कि परीक्षा लेने वाले (इंस्पेटकर) उलटा कहने वाले लड़के को झूठा ठहरा कर नापास (फेल) करदेते हैं? इंस्पेकटर साहिब! ज़रा पार्वती ढूंढकनी के कहने पर भी आप को ख्याल रखना होगा! अफसोस है पार्वती

की खांड खिलाने वाली चतुराई पर !

"ज्ञानसहिता क्रिया फलवती"

तटस्थ—पार्वतीजी ने सूयगडांग सूत्र की गाथा लिखी है सो कैसे है ?

विवेचक—अजी क्या पूछते हो ? यह भी पार्वती की अज्ञानता की निशानी है, क्योकि वहां तो साधुके आचार धर्म का कथन है, और क्रिया की प्राधान्यता बतलाई है, परंतु पढ़ने का निषेध नहीं किया है, प्रत्युत पढ़ने की शिक्षा (हदायत) पाई जाती है, पढ़ा न होवेगा तो शुद्धधर्म क्या पार्वती का कपाल सुनावेगा ? वहां तो मतलब ही और है, परंतु हठधर्म के प्रताप से हठधर्मीयों को और का और ही दिखाई देता है, ज़रा अनुयोगद्वार सूत्र, ठाणांग सूत्रका—"सक्कया पायया चेव" इत्यादि गाथा का अर्थ विचार लेती, तो क्यों हंसी होती, इसमें साफ लिखा है कि संस्कृत और प्राकृत दो प्रकार की भाषा मंडल में ग्रहण करके बोलने वाले साधुकी भाषा प्रशस्थ है॥ तथा श्री उववाइय सूत्र में जहां गणधर महाराज का वर्णन है वहां लिखा है कि गणधर महाराज " सव्वक्खरसन्निवायसव्वभासाणुगामिणो " सर्व अक्षरों के सान्निपात (जोड) और सर्व भाषा के जानकार होते हैं। श्री राजप्रश्नीय सूत्र में भी इसी प्रकार का पाठ है। श्री दशवैकालिक सूत्र में लिखा है " पढमं णाणं तओ दया " पहिले ज्ञान और पीछे दया इत्यादि पाठो से ज्ञान की प्राधान्यता होने पर भी एकांत एक बात को खींचलेना यही तो मिथ्यात्व है ! परन्तु शास्त्रों के परम रहस्य को अज्ञ ढूंढिये क्या जानें ? गंभीर धुरंधर पंडित जैनाचार्य ही जानते थे, और जानते हैं । इसीवास्ते श्रीअनुयोगद्वार

सूत्रमें फरमाया है कि "सव्वेसिंपि नयाणं, वत्तव्वं बहुविहं णिसामित्ता। तं सव्वनय विसुध्धं, जं चरण गुणाठिओ साहु"

भावार्थ—सर्व नयोंकी अनेक प्रकार की वक्तव्यता सुनकर सर्वनय विशुद्ध वस्तु को चारित्रमें स्थित साधु ग्रहण करे, अर्थात् ज्ञाननय, क्रिया नय—निश्चयनय, व्यवहारनय—द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिकनय—शब्दनय, अर्थनय—इनको एकांत माननेमें मिथ्यात्व होता है और स्याद्वाद संयुक्त मानने वाला सम्यग्दृष्टि होता है इसवास्ते सर्वनयविशुद्ध-वस्तु को चारित्रमें स्थित साधु ग्रहण करे एकांत नहीं—परंतु पार्वती ने इस गाथा का जो अर्थ लिखा है सो ठीक नहीं, क्योंकि "णिसामित्ता" क्त्वा प्रत्ययांत इस शब्दका अर्थ तो लिखा ही नहीं है, कहां से लिखे? और श्रीबुद्धिविजय जी (श्री बूटेराय जी) महाराज जी आदि के विषय में जो कुछ लिखा है सो भी उजाड़में रोने के समान कोई नहीं सुनता! पार्वती के पास क्या प्रमाण है कि वह नहीं पढे थे? और प्रायः करके जो पढे हुए नहीं होते हैं वह ढूंढक पंथानुयायीवत् मानके मारे व्याख्यान वैगरह नहीं करते हैं, कदापि कारण वशात् करने का काम पड़ जावे तो पूर्वपुरुषों ने भाषा में जो वर्णन किया है" वही ही सुनाते हैं, परंतु जैसे अज्ञढुंढिये "वायाविध्धुव्वहढो" इस दशवैकालिक के पाठ का अर्थ "बहेडे का वृक्ष" इस प्रकार का अनर्थ करते हैं, वैसे नहीं करते हैं। इसवास्ते जैनसाधुओं पर ऐसा आक्षेप करना नपुंसक से पुत्रोत्पत्ति की आशा करने समान है और जो पठित अपठित का दृष्टांत दिया है सो भी अज्ञताकी निशानी है, क्या वहां कोर्ट में कोई लिखत पढ़ने का काम पड़ जावे तो वह अपठित पढ़ लेवेगा? कदापि नहीं! बस इसी प्रकार अपठित शास्त्रों की बातका परमार्थ नहीं जान सकता है, क्योंकि जब वह पढ़

ही नहीं सकता है तो परमार्थ का समझना कैसे हो सकता है? इसवास्ते विद्याध्ययन करना अतीव जरूरी है, ॥ तथा राजनीति का नाम लेकर

"पठकः पाठकश्चैव येचान्ये शास्त्रचिंतकाः
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः"

इस श्लोक का जो कुछ मतलब घसीटा है उस में सत्यता लेशमात्र भी सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि ज्ञान का अनादर करके एकांत क्रिया का आदर किया है, परंतु इस श्लोक का परमार्थ तो यह है कि—ज्ञान क्रिया सहित होवे, और क्रिया ज्ञान सहित होवे तो यथार्थ फल प्राप्त होता है, क्योंकि "यः क्रियावान् स पंडितः" इस पदका शब्दार्थ "जो क्रियावाला सो पंडित" इतना ही मात्र होता है, अब बात विचारने योग्य है कि किस प्रकार की क्रियावाला होना चाहिये? जगत् में जितने फल (काम करने) हैं सब क्रिया हैं तब तो द्यूतक्रियावाले को, विषयक्रियावाले को, हननक्रिया वाले इत्यादि सब को पार्वती के किये अर्थ अनुसार पंडित कहना चाहिये! क्योंकि जो क्रियावाला सो पंडित है ऐसा पार्वती का मानना है, परंतु विद्वान पुरुष तो पंडित शब्दकी अपेक्षा शीघ्रही परमार्थ निकाल लेवेगा कि ज्ञानसहित क्रिया वाला अर्थात् शास्त्राधार क्रियावाला पंडित होता है क्योंकि "पंडा तत्त्वानुगा बुद्धिः—तत्त्वमनुगच्छतीति तत्त्वानुगा—सा पंडा (तत्त्वानुगा बुद्धिः) जाना अस्य—जातार्थे इतः—स पंडितः" पंडित शब्द इस रीति से सिद्ध होता है. जब तत्त्वग्रहण करने की बुद्धि वाला पंडित कहाता है तो क्या वह ज्ञानरहित ही होगा? कदापि नहीं, इसवास्ते चतुर्थ पद "यः क्रियावान् स पंडितः" "यः पंडितः

स क्रियावान्" जो क्रिया वाला सो पंडित, जो पंडित सो क्रियावाला "भवति" क्रिया का दोनों स्थान में अध्याहार होता है । तात्पर्य यह कि न केवल ज्ञान, और न केवल क्रिया,किन्तु ज्ञानक्रियायुक्त पंडित होता है, और इसीवास्ते चतुर्दश पूर्वधारी श्रीभद्रबाहु स्वामी जी श्रीआवश्यकसूत्रनिर्युक्तमें फरमाते हैं कि—

" हयं णाणं किया हीणं हया अण्णा णओ किया
पासंतो पांगुलो दड्ढो धावमाणो य आंधलो "

तथा-संजोगसिद्धिइ फल वयंति नहु एग चक्केणहंपयायइ
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा ते संपउत्ता णगरे पविठ्ठा"

इत्यादि तथा और भी पूर्व महर्षियोंने "ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः"। फरमाया है, तो भी यदि अपना हठ नहीं त्यागे गी तो खोटी क्रिया करने वाले भी पार्वती को पंडित मानने पड़ेगें, ग्रथिल (सौदाइ पागल) भी पंडित हो जावेंगे ! इसलिये पार्वती का किया अर्थ पूर्ण नहीं है ! और क्रियावान् को पंडित मानना, सो क्रिया भी शास्त्राधार होनी चाहिये, मनःकल्पित नहीं, परंतु ढुंढकपंथ में तो प्रायः बहुत क्रिया मनःकल्पित ही चलती हैं ! यथा—दीक्षा, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, योगोद्वहन, संथारा, श्राद्धद्वादशव्रतोच्चरण,श्राद्धप्रतिक्रमण, पौषध, सामायिक, इत्यादि क्रिया जिस विधि ढुंढक लोग करते हैं ढुंढक के माने शास्त्रों में से किसी भी शास्त्र में नहीं है बलकि किसी भी जैनशास्त्र में नहीं है, और इसीवास्ते पार्वती ने केवल क्रियावाले को पंडित बनाना चाहा है, परंतु वह तो हंस की पंक्ति में बगले के समान जिस समय वचन उच्चारण करेगा मूर्ख प्रगट हो जावेगा, अतः सिद्ध हुआ कि शास्त्रानुसार क्रियावान्

पंडित होता है, परंतु शास्त्र विना मनःकल्पित क्रिया करने वाले ढुंढिये कदापि पंडित नहीं हो सकते हैं! जो शास्त्रानुसार क्रिया न करे, केवल क्रियावाला होवे यदि उसको पंडित माना जावे तो तामलितापस, जमालि, गोशाला प्रमुख सब को पंडित मानना पड़ेगा, क्योंकि जैसी उग्र क्रिया इन्होंने की है समग्र ढुंढिये मिल जावे तो भी एक की बराबरी नहीं हो सकेगी, विचारो कि ऐसे क्रियावाले थे तो भी शास्त्रकारों ने इनको पंडित नहीं कहा है सो क्या बात है?

" प्रशंसापत्रदाता की पांडित्यता "

पृष्ठ २८ से पृष्ठ ६७ तक जो कुछ आल जाल लिख मारा है निःकेवल अबलाक्रीडा ही है, इस से अधिक फल कुछ भी नहीं। हां बेशक! जो लोग आंख के अंधे, गांठ के पूरे, मतलब के यार हैं, वह प्रशंसापत्र प्रदानवत् मनमाना संकल्प विकल्प करें! देवी, आचार्या, पंडिता, बालब्रह्मचारिणी मरज़ी में आवे सो कहें उनका इखतायार है परंतु प्रशंसापत्र देनेवालोंने थोड़ासा भी ग्रंथ अवलोकन किया मालूम नहीं देता है, केवल किसी की दाक्षिण्यता से या अन्य किसी कारण से प्रशंसापत्र लिख दिया है, यदि ऐसे न होता तो—शास्त्री, बी०ए, प्रोफैसर, पंडित, गोस्वामी, योगीश्वर इत्यादि उपाधिधारक विद्वान्पुरुष सम्मति देने के समय जरूर ही सोचते कि पार्वती देवी की बनाई थोथी पोथी का " सत्यार्थ-चंद्रोदय जैन " यह नाम संस्कृत के नियमानुसार है या नहीं? जब इतना भी पंडितों ने संशोधन नहीं किया, प्रत्युत मक्षिका स्थाने मक्षिकावत् वही नाम घसीटा है, और लिख मारा है कि हमने समग्र पुस्तक देखा है! तो इससे क्या बना? हां बेशक! जिल्द

सहित पुस्तक तो जरूर देखा होगा ! सो पुस्तक तो अज्ञ भी देख लेता है ! परंतु पंडितों का जिन में भी सम्मति दाता का देखना तो ऐसा होता है कि अशुद्धता दूर करके शुद्धता बतलाई जावे, सो तो आकाशपुष्पवत् अभाव है ! और अबला की कृतिमें सम्मति देते हुए आप ही अबलावत् कुछक कलंकित हो गये हैं, और अबला की प्रशंसा करते हुए अपनी सबला विद्वत्ता को खो बैठे हैं ! अन्यथा अबला की भूल दूर करके अपनी सबला विद्वत्ता प्रकट करते। हां बेशक ! अबला की प्रशंसा करते हुए आपने दर्शाया है कि अबला (स्त्री) होकर ऐसा उद्यम करती है तो पुरुष को इस से भी अधिक करना चाहिये ! सो इस स्ववचनानुकूल आपको जरूर अशुद्धता का उपयोग नहीं करना चाहिये ! क्योंकि आपकी देवी पार्वती अशुद्धता का उपयोग नहीं रखती है तो आपको क्या जरूरत है ? बल्कि आपने तो अपने वचन को सिद्ध करने वास्ते देवी का अनुकरण यहांतक कर दिखाया है कि अपना सिद्धांत और स्वगुरुवाक्य तक भी भुला दिया है, और देवी की प्रशंसा लिख मारी है, सत्य है, "अर्थी दोषं न पश्यति" आपको तो मूर्त्ति पूजा के निषेध से प्रयोजन है, चाहे कोई मातंगी भी खड़ी होजावे और मूर्त्तिपूजन का खंडन करने लग जावे, आप झटपट उसे सार्टीफिकट देने को तैयार हैं, बस इसी बात से आपने सम्मति प्रशंसापत्र प्रदान करे होंगे और कोई मतलब नहीं मालूम देता है। और यही बात प्रकटतया आपके दिये प्रशंसापत्र में पाई जाती है कि मूर्त्तिपूजा का इस पुस्तक में खंडन है, परंतु आपने तथा आपके स्वामीजी ने जो यह सिद्धांत स्वीकार किया है कि मूर्त्ति-पूजा जैनियों से शुरू हुइ है, इसपर पूर्वोक्त बात से आपने पानी फेर दिया है, सत्य है—कुसंग का फल खोटा ही होता है—दूसरे को

सम्मति देते हुए अपना ही सिद्धांत खंडित कर दिया ! नीति का वाक्य है " कुसंगासंगदोषेण साधवो यांति विक्रियाम् " सो पंडित जी महाराज ! आपके साथ भी ऐसा ही बना है, अच्छा पंडित जी साहिब ! स्वामीदयानंदजी साहिब तो अपने बनाये सत्यार्थप्रकाश में जगह २ जैनशास्त्रों के प्रमाणसहित पूजा का वर्णन करते हैं, और आप सम्मति देते हैं कि जैनशास्त्रों में पूजा नहीं है, तो अब विचारना योग्य है कि आप में से झूठा कौन ? आप वा आपके गुरु ?

पार्वती के उत्सूत्र का विचार ।

तटस्थ—आप इन विचारे पंडितों को क्या कहते हैं ? इनका तो यह हाल है " जहां देखां तवा परात ऊहां गावां सारी रात " परंतु आप पार्वती के लेख की विवेचना करें ?

विवेचक—" बेशक ! जैनशास्त्रों से तथा जैनशैलि से प्रायः बिलकुल अनभिज्ञ इन पंडितों के विषय मे तो हमको केवल इतना ही कहना है कि आंखें बंद करके सम्मतिप्रशंसापत्रप्रदान करने की जो चेष्टा की है सो उनको कलंकित करती है । परंतु पार्वती जैनशैलि से अनजान होकर भी जानकारों मे अपनी टांग फंसाना चाहती है, इस बात पर हमको अतीव अफसोस प्रकट करना पड़ता है क्योंकि भगवान् की मूर्त्ति में चार निक्षेप उतारने की जो चालाकी दिखाई है बिलकुल जैनसिद्धांत से विरुद्ध है । जैनशास्त्रों में पार्वती की कल्पनानुसार निक्षेपों का वर्णन ही नहीं है, सो विस्तार सहित पूर्व लिखा गया है, इसवास्ते निक्षेपविषेय में वार वार लिखना पिष्टपेषण करना है . और यदि इस बात का घमंड है, तो जिसप्रकार निक्षेपों की बाबत पार्वती ने कल्पना की है, किसी

जैनशास्त्र में इस रीति का लेख दिखा देवे, अन्यथा पार्वती आप ही अपनी कल्पना से झूठी होचुकी है, ज़रा आंखों के आगे से पक्षपात का परदा हटाकर देख लेवे कि—पूर्वाचार्य क्या फरमाते हैं तथाहि :—

नामजिणा जिणनामा । ठवणजिणा पुण जिणंद-पडिमाओ ॥ द्व्वजिणा जिणजीवा । भावजिणा समवसरणत्था ॥ १ ॥

भावार्थ—जिनेश्वरदेव का नाम सो नामजिन । जिनेश्वरदेव की प्रतिमा स्थापनाजिन । जिनेश्वरदेव का जीव द्रव्यजिन । और समवसरण में विराजमान भावजिन । जिसका नाम उसी की स्थापना, उसी का द्रव्य और उसी का भाव, इस प्रकार चारों निक्षेप का समवतार होता है. श्रीभगवती सूत्रादि जैनागमों में "**भवियद्व्वदेव भवियद्व्व मनुअ**" इत्यादि स्थल में जिस गति का बंध पड़ा होवे उस गति का द्रव्य मानना फरमाया है, अर्थात् मनुष्यगति में विद्यमान है, परंतु देवगति का आयुष्यदल बांध लिया है, तो उसको द्रव्यदेव कहना, इसी तरह सब गति की अतीत अनागत पर्यायापेक्षा से उस २ गति का द्रव्य उस २ जीव को मानना, जैसे जो आगे को होने वाले अरिहंत तीर्थंकर शास्त्रों में निश्चित होचुके हैं, वह सब द्रव्य अरिहंत—द्रव्य तीर्थंकर—द्रव्य जिन कहाते हैं । तथा जो जिन—अरिहंत तीर्थंकर—पदवी को भोग कर सिद्ध हो चुके, वह सब द्रव्य जिन-अरिहंत-तीर्थंकर कहाते हैं, यदि ऐसे न माना जावे तो चउव्वीसत्था (लोगस्स) झूठा मानना

पड़ेगा ! क्योंकि उसमें ऋषभादि महावीर पर्यंत तीर्थंकरों को नमस्कार किया जाता है, और इसी तरह साधु के प्रतिक्रमण (पगाम सिज्झाय) में भी " नमो चउव्वीसाए तीत्थयराणं उसभाइ महावीर पज्जवसाणाणं " पाठ आता है, अब विचारना योग्य है कि वर्त्तमान भावनिक्षेप तो इनमें से एक भी नहीं है, सब मोक्ष को प्राप्त होगये है, सब में सिद्ध का भावनिक्षेप है, तो पूर्वोक्त पाठ, विना द्रव्यनिक्षेप के माने किस तरह सिद्ध होवेगा ? जब कि ऐसे ऐसे प्रत्यक्ष पाठ आगमों में आते हैं, तो भी स्थापना द्रव्यनिक्षेप में उपादान कारण रूप उत्सूत्र प्ररूपण करके लोकों को भ्रमजाल में फंसाने का उद्यम करने को मिथ्यात्व मोहनीय के उदय की अधिकता दुर्भव्यता या अभव्यता का सूचक मानना प्रतिकूल नहीं मालूम होता है, क्योंकि मूर्त्ति का उपादान कारण पाषाण सिद्ध करने के वास्ते भगवान् का उपादान कारण अपनी कुमति प्रकट करके जो कुछ उत्सूत्र भाषण किया है, परमात्मा जाने इस बात से पार्वती ने कितना दीर्घ संसार बना लिया होगा ?

तटस्थ-क्या पार्वती जी का लिखा उपादान कारण ठीक नहीं है ?

विवेचक-उपादान कारण का जो अर्थ लिखा है उस ही से तो भली प्रकार पार्वती की न्याय अनभिज्ञता सिद्ध होती है, भला क्यों न होवे ? जहां व्याकरण को व्याधिकरण माना जाता है गधाभास की सिद्धि भी तो वहां ही होती है ! जो अर्थ उपादान कारण का लिखा है बेशक पार्वती के गधाभास प्रकरण के बेवकूफाध्याय के अनभिज्ञ उद्देशे में लिखा होगा ! इतना भी पता पार्वती

को नहीं है कि मैंने जो अर्थ किया है वह उपादानकारण का है अथवा निमित्तकारण का? यह हाल और फिर बड़े २ महात्मा पूर्वाचार्यों के किये अर्थों को झूठा करने का उद्यम करना कैसा मूर्खता है. क्या यही पार्वती की परंपरा की रीति है?

सुज्ञवाचकवर्ग को मालूम कराने के लिये पार्वती पंडिता की कूख से निकला उपादानकारण का अर्थ जैसा का तैसा यहां लिखा जाता है। पाठकवृंद ज़रा सावधान होकर इस अपूर्व अर्थ का विचार करें, तथा सम्मतिप्रशंसापत्र देनेवाले भी देखें कि देवी साहिबा ने "सत्यार्थचंद्रोदयजैन" में क्या लिखा है। यथा:—

"उत्तर पक्षी—मूर्त्ति का द्रव्य क्या है और भगवान् का द्रव्य क्या है।

पूर्व पक्षी—मूर्त्तिका द्रव्य जिससे मूर्त्ति बने क्योंकि शास्त्रों में द्रव्य उसे कहते हैं। जिससे जो चीज बने अर्थात् वस्तु के उपादान कारण को द्रव्य कहते हैं।

उत्तर पक्षी—तो मूर्त्तिका द्रव्य (उपादान कारण) क्या होता है। और भगवान् का द्रव्य (उपादान कारण) क्या होता है।

पूर्व पक्षी—मूर्त्ति का द्रव्य (उपादान कारण) पाषाणादि होता है। और भगवान् का द्रव्य (उपादान कारण) माता पिता का रज वीर्य आदिक मनुष्यरूप उदारिक शरीर होते हैं"।

धन्य है!!! इस मूजिब तो पार्वती के और ढुंढिये साधुओं के साधुत्व का उपादानकारण पार्वती और ढुंढिये साधुओं के माता पिता का रुधिर और वीर्य हुआ! क्योंकि पार्वती और ढुंढिये साधुओं की उत्पत्ति माता पिता के रुधिर और वीर्य से हुई है, तब तो पार्वती की श्रद्धा और कल्पना के अनुसार उनको विषय

सेवने का पाप कदापि नही होना चाहिये, प्रत्युत बड़ा भारी पुण्य और धर्म होना चाहिये कि जिस काम के करने से पार्वती और ढुंढिये साधु सदृश उत्तम जीव बने, क्योंकि उनके विषय सेवन से माता पिता का रुधिर और वीर्य मिलकर पार्वती और ढुंढिये साधुओं का उपादानकारण बना, जिस उपादान कारण से फिर पार्वती समान पंडिता और ढुंढिये साधु समान पंडित बने, निःसंदेह पार्वती की श्रद्धा और कल्पनानुकूल विषय सेवने वालों को खूब आनंद बन गया, विषयानंद भी लेलिया, पुण्य भी प्राप्त कर लिया, और ढुंढक साधु और साध्वी बनने वाले संतान भी बना लिये, वाह, वाह, पार्वती के समान बुद्धिवाली पंडिता जिस कुल या जाति में होवे, वह कुल या जाति क्यों न प्रसिद्ध होवे, मालूम होता है कदाचित् पार्वती की इस फिलासफी को सोचकर ही जगरांवां में ढुंढक साधु साध्वी का संमीलन हुआ होगा ॥

अरे भाई! उपादान् कारण वह होता है जो स्वयं कार्य रूप होजावे, जैसे कि घट कार्य का उपादान कारण मृत्तिका है, परंतु कुंभकार, चक्र, दंडा आदि नहीं. तात्पर्य यह है कि कार्य रूप पर्याय के पूर्व जो कारणरूप पर्याय होता है, उसका नाम उपादान कारण है, ना कि और किसी का. इसवास्ते पार्वती का जो ख्याल है सब उजाड़ में रोना नयनों का खोना है, बस सिद्ध हुआ कि द्रव्य-जिन जिनेश्वरदेव का जीव है, नाकि माता पिता का रुधिर और वीर्य! खबर नहीं पूर्वोक्त अपूर्वज्ञान किस थैली में से पार्वती ने निकाला है, सत्य है मतांध प्राणी अनर्थ का ख्याल नहीं करता है, और वस्तु के उपादानकारण को द्रव्य कहना, यह भी पार्वती की अज्ञता का सूचक है. क्योंकि वस्तु तो आपही द्रव्य है। यथा जीव द्रव्य, अजीव द्रव्य, इनका उपादान कारण क्या कोई आकाश

का फूल या गधे का शृङ्ग बनावेगी ? असल बात तो यह है कि जैन शैलि के अनुसार नय निक्षेपों का ज्ञान ही पार्वती को नहीं है वृथा ही अपनी टांग जानकारी में फंसाती है, देखो ! शास्त्रकार द्रव्यनिक्षेप किसको फरमाते हैं, अतीत अनागत पर्याय के कारण का नाम द्रव्य है :—" दव्वो भावस्स कारणं " । इतिश्री अनुयोगद्वार सूत्र वचनात् । इसवास्ते अरिहंत भगवंत का द्रव्यनिक्षेप उनके माता पिता के रुधिर और वीर्य को ठहराना पार्वती की मूर्खता है, और यदि अरिहंत पदवी का ख्याल किया जावे तो वह तीर्थंकर नाम कर्म नामा पुणप्रकृति है । उसका उपादानकारण ज्ञातासूत्र में वर्णन किये बीस स्थानक हैं, नाकि माता पिता का रुधिर और वीर्य, और तीर्थंकर के निक्षेपवर्णन करते २ मूर्त्ति पर जा उतरना यह भी एक तिरिया-चरित्र की चालाकी का नमूना है, इसकी बाबत प्रथम निक्षेपों के वर्णन में विस्तार पूर्वक दृष्टांत सहित लिखा गया है, उस पर विचार करने से स्वयमेव पता लग जावेगा ; परंतु केवल डाकीया (चिट्ठीरसां) वाला काम करने से कुछ भी परमार्थ नहीं मिलेगा. जैसे चिट्ठीरसां डाक की थैली लेकर ग्राम में फिरता है, (लिफाफा) में लिखा समाचार बिलकुल नहीं जान सकता है. इसीतरह गुरुगम्यता टीकादि के विना परमार्थ का मिलना अतीव कठिन है । चिट्ठी पर तो एक ही कागज का परदा पड़ा होता है परंतु सूत्र पर तो अनेक आशय रूप कागज के परदे हैं, जोकि शुद्ध आम्नाय बताने वाला मिले तब ही यथार्थ वांचे जाते हैं, अन्यथा कदापि नहीं । श्रीनंदिसूत्र में फरमाया है कि :—

"सम्मदिट्ठि परिग्गहियाणि मिच्छासुत्ताणि सम्मसुत्ताणि मिच्छादिट्ठि परिग्गहियाणिसम्मसुत्ताणिमिच्छासुत्ताणि

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि के ग्रहण किये मिथ्यासूत्र सम्यक् सूत्र है, और मिथ्यादृष्टि के ग्रहण किये सम्यक् सूत्र मिथ्यासूत्र हैं। मतलब कि सम्यग्दृष्टि गुरुगम्यता टीकादि के अनुसार नय नय की अपेक्षा परमार्थ को ग्रहण कर लेता है, इसवास्ते सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा मिथ्या शास्त्र भी सम्यक् शास्त्र हैं, और मिथ्यादृष्टि विपरीत श्रद्धावाला होने से टीकादि के अर्थ को छोड़ प्राचीन पद्धति को तोड़—अपनी मति कल्पना का अर्थ जोड़—छिद्र ग्रहण करने की तरफ ही दृष्टि को मोड़ता है ; इसवास्ते मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा सम्यक् शास्त्र भी मिथ्या शास्त्र हैं। सो यही बात पार्वती के क्रिये ऊत पटांग अर्थोंमें ज्यों की त्यों पाई जाती है।

इति तपगच्छाचार्य श्रीमद्विजयानन्दसूरिशिष्य महोपाध्याय
श्रीमल्लक्ष्मीविजयशिष्योपाध्याय श्रीमद्धर्ष
विजय शिष्य श्रीमद् वल्लभविजय
विरचित जैनभानु नाम्नो
ग्रन्थस्य प्रथमो भागः
समाप्तः ॥

प्रथमसे ग्राहक होनेवाले महाशयों के नाम।

सेठ हीराचंद सचेती अजमेर २००
लाला नरसिंहदास बूटामल
गुजरांवाला २
,, सूलामलहुकमचंद पट्टी १
भंडारी अनराज-सादडी ४
,, ताराचंद ,, १
जैनश्वेतांवरमित्रमंडली भूपाल १
लाला लबूराम विहारी लाल
सिरहाली .. १
,, चूनीलाल मोतीलाल
गुजरांवाला ... १
,, मानकचंद लाहौर १
,, मुकंदीलाल जैनी पट्टी १
सेठ सोरीमल केसरमल पाली १
,, चंदनमल नागोरी
छोटीसादडी ५
लाला अरजनमल भीमामल
रामनगर २
सेठ जठालाल दसौरा, उदयपुर १
लाला पंजाबराय लुधियाना १
,, उत्तमचंद पिंडीदास रावलपिंडी २
,, नंदलाल मूलचंद
पिंडदादनखां १
,, ताराचंद मालेरकोटला १
,, पूरणचंद ,, ... १
,, श्रीपतमल ... ,, १
,, भगवानदास ,, .. १
,, दीनाराम ,, १

लाला सावनमल मलेरकोटला १
श्री आत्मानंद जैन सभा ,, १
लाला दुर्गाप्रसाद मुन्शीराम
खंडेलवाल, उडमड २
,, श्रीनिवास जैनी शांकर १
श्रीसंघ जंडीयाला १
सेठ लाभचंद कोचर वीकानेर ४
,, अनदमल गुलाबचंद कोचर
वीकानेर २
,, मगनलाल पुंजावत
उदेपुर .. ५

श्रीजैनविद्योतेजकसभा पालनपुर की मारफत (६४) नीचे मूजिब

श्रीजैनविद्योतेजक सभा
पालनपुर .. ५
श्री जैनशाला दोसी मगन भाई
वकलचंद पालनपुर ५
शा० सेताजी मंगलजी
भाई ईश्वर भाई ,, ५
,, पारी तलकचंद रामचंद ,, ५
,, ,, अमुलखभाईखूबचंद ,, २
,, ,, पानाचंद खुबचंद ,, २

कोठारी धर्मचन्द चेलजी की मारफत

वावजैनशाला वाव १
सेठ टीलचंद खेतसी ,, १
पारी सरूपचंद पानाचंद ,, १

वोरा मगन मोतीचंद वाव १
. मूलकचंद जोईता ,, १
दोसी केवलरामाणी ,, १
कोरडीया परसोतमनथमल,, १
सेठ नरसिंग वस्ताचद , १
शा० त्रिभुवन गुलावचंद ,, १
कोठारी धरमचंदत्रलजीपालनपुर१
शा० मल्लालाल उजमचंद ,, १
दोसी ललुभाइ रामचंद ,, १
,, नालचंद खेमचंद ,, १
शा०चूनीलाल उजम डुंगर, १
गांधि कस्तूर भाइ मल्लाचद,, १
पारी रवचद उजमचंद ,, १
मेता चेला नाथुभाइ ,, १
पारी परसोतम रवचद ,, १
मेता वालुटोकरसी , १
भणसाली रवचद रायचंद, १
शा०जीवराज दलसुखचंद , १
शा० टोकरमनजी १
कोठारी रीखवचंद उजमचंद , १
पारी अमुलख तलकचंद ,, १
शा० भवान छगन १
वरीआल चेला अमुलखभाई , १
पारी मणीलाल खुसालचंद १
मेता हीरालाल मानकचंद
झवेरचंद ,, १
शा० गलावचंद मगनलाल ,, १
शा० रतनचंद रामचंद ,, १
मेता कवरसीग उमेदचद , १

कोठारी चमनलाल जीवराज
पालनपुर १
मेता अमुलखगलजीभाई ,, १
गांधी नहालचंद रायचद,, १
शा०गिरधरलाल धर्मचंद,, १
शा०फोजराजत्रीभोवनदास,, १
पारी सूरजमल नहालचंद,, १
. प्रेमचंद वरधमान ,, १
शा० मलूकचद रायचंद ,, १
पारी प्रेमचंद केवलचंद ,, १
ला०तुलसीराम हंसराज रोपड १
ला० मिलखीराम धनीराम
कसूर १
. विशनलालकोठारी सरवार१
,, सुगनचंद तातेड लश्कर १
,, सुगनचंद कोठारी ,, १
,, वस्तीमल कोठारी ,, १
श्रीयुत पं०भैरवदानजी यति
फतेपुर १
ला०लधुशाह जगन्नाथ
नारोवाल २
शा०श्रीयालक्ष्मीचंद परतापगढ२
, गुलजारीमल सिवहरा १
,, जोतीचद चूनीलालपोरवाड
मल्हारगढ १
रतनलाल तातेड भूपाल ५
वाबू विसभरसहाय जैनी
कैराना १
शा० गुलावचंद चिंतामणिदास
ढोर जोहरी जयपुर १

—०—

सेठ ज्वाहरलाल सकंदराबाद ५
ला० संतराम मंगतराम अंबाला ५
,, जगतूमल सदासुख ,, ५
,, हीरालाल नीरातामल ,, २
सेठ सोभागमल हरकावत
लश्कर ५
श्रीज्ञानवर्धक जैनमित्र मंडल
सैलाना ३
सेठ गोमाजी गंभीरचंद रतलाम १
, केसरजी सूरजमल कोठारी
दिगठाण २
सेठ बुधुमल वल्द धूमसिंह
स्यासली १
, शिवधानमल श्यामलाल
सरसा .. १
,, लक्ष्मीचंद केसरीचंद
सिवनी छप्परा १
,, हमीरमल धोका-पाली २
ला० अमीचंद जैनी पसरूर १
शा० मूलचंद वोहरा अजमेर २
मुनि गुणमुनिजी सूरत ... १
शा० अखेचंद पारख मुंगेली १
दोसी चूनीलाल गोविंद जी
धोलेराय ... १
शा० एच० एस० कोठारी जैनी
सैलाना १
,, खुशालजी लालाजी
अलीराजपुर १
महता बखतावरचंद
सालरा पटन १

शा० नाथूलाल-डग १
,, घेवरचंद चंदनमल
मरीकुण्यां ४
,, नंदराम मोतीलाल मालवी
महीदपुर १
,, चिंतामणदास मंजीत १
श्रीजैनविद्योत्तेजकसभा
पालनपुर ... ३६
ला० रामचंद कपूरथला २
,, रूपचंद शंभूराम जोहरी
डेरागाज़ी खां १
श्रीश्वेतांबरजैनवल्लभपुस्तकालय
जयपुर ... १
शा० नंदलाल पारख भिलसा १
ला० मिठ्ठूलाल जैनी भरवसराय १
श्रीजैन आत्मानंद सभा
भावनगर १००
,, जैनधर्मप्रसारकसभा " १००
तारावत केशवदास न्यालचंद
वनकोडा १
लाला प्रेमचन्द अमीचन्द
स्नखतरा ... ५
,, चूनीलाल मोतीलाल गुजरांवाला ४
,, कालुशाह कन्हैयालाल ,, १
,, भागुशाह कुन्दनलाल ,, १
,, तिलोकचन्द पलीडर लुधिहाना १
उपाध्याय श्रीवीरविजय जैन
श्वेतांवरी लायब्रेरी, आगरा ५
प्यारेलाल सरनचंद विनोली ५०

(शुद्धिपत्र)

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
दुख्यांगे	दुःखायेंगे	२	२
हेता	देता	,,	८
वर्णम्	वर्णनम्	८	१६
धींतं	धींषे	१०	२
भ्त्	भूत्	,,	३
वान्	०	११	६
स्वाधान	स्वाधीन्	,,	१०
ण	म	,,	१७
क्या तो	तो क्या	१४	१
कुहाड़ी	कुहाडी	१५	१४
का	०	,,	१६
ना	नां	१७	१६
भाविष्य-	भविष्य-	२१	७
नू	नु	२२	३
ण	णं	३२	२
द्ध	द्व	,,	१३
त	त्	४१	९
तटस्थ	विवेचक	४२	२४
ऋभ	ऋषभ	४५	१
आवश्य	अवश्य	५२	१७
दीजये	दीजिये	५४	४
विवेचक-	तटस्थ	६२	३
समुन्दर	समुद्र	६४	१३
श्रीमान्	श्रीमन्	,,	१९
की	के	६६	२२
ता	०	,,	२३
रेः	रैः	७१	२२
ल	क	७३	२२
के	०	८३	१२
व्याख्य	व्याख्या	८३	१९
भ्युगमो	भ्युपगमो	,,	२२
विग्रह	विग्रहः	,,	२३
मक	मेक	८४	१
ग	ज्ञ	,,	११
मा	म	८५	५
द	०	,,	२०
धी	धि	८४	४
हि	ह	,,	९
वे	०	,,	२२
ष्ठीविभीक्त	ष्ठविभक्ति	८८	१
दीं	दं	८९	६
ठ	ठ्ठ	,,	१८
न	ना	९१	१८
मुचं	मुंच	९५	९
चाकाक	चालाक	,,	१६
च	ञ्च	,,	,,
फल	फलं	१००	८
हं	रहं	,,	,,
च्च	च्चा	,,	१७
शस्त्र	शास्त्र	,,	१९
की	का	१०१	९
ता	०	,,	,,
पे	प	१०३	२२
ष्ठ	ष्ठ	,,	२३
है	है	,,	२४
कसा	कैसी	१०६	३
वढ़ा	वडा	१०७	१
थि	थि	,,	२०

॥ ॐ ॥

पुस्तक मिलने का पता.

(१) जसवंतराय जैनी.
लाहौर (पंजाब)

(२) श्री जैन आत्मानंद सभा.
भावनगर (काठीयावाड़)

(३) श्री जैनधर्मप्रसारकसभा.
भावनगर (काठीयावाड़)

(४) श्री आत्मानंद पुस्तक प्रचार मंडल
छोटा दरीबा-दिल्ली